ग्रामीण विकास को समर्पित

कुरुक्षेत्र

वर्ष 51 अंक : 7 मई 2005 मूल्य : सात रुपये

बाल श्रम उन्मूलन

रोजगार गारंटी : आशाएं और आशंकाएं

लघु उद्योग : संरक्षण से संवर्धन की ओर

चौपाल से ई-चौपाल की ओर

राष्ट्रीय ग्रामीण स्वास्थ्य मिशन का शुभारंभ

प्रधानमंत्री डा. मनमोहन सिंह ने कहा है कि लंबी बीमारियों, कुपोषण और अन्य सामाजिक बुराइयों से छुटकारा पाना है तो "हमारा स्वास्थ्य हमारे हाथ" के मूल मंत्र को अपनाना होगा। प्रधानमंत्री ने राष्ट्रीय ग्रामीण स्वास्थ्य मिशन का शुभारंभ करते हुए कहा – "हमने अपने स्वास्थ्य कार्यक्रम तैयार करते समय कई गंभीर भूलें की हैं। हमने स्वास्थ्य सेवा प्रदान करने का ऐसा माडल बनाया है जो संसाधनों को टुकड़ों– टुकड़ों में बांटता है और क्षमताओं का अनावश्यक प्रयोग करता है। सबसे महत्वपूर्ण बात यह है कि हमने सार्वजनिक स्वास्थ्य के मुद्दे और सामाजिक तथा रोकथाम संबंधी औषधियों पर पर्याप्त ध्यान नहीं दिया है।" उन्होंने कहा कि यह मिशन देश में स्वास्थ्य सेवाएं प्रदान करने के तरीकों में आमूल परिवर्तन लाएगा।

डा. सिंह ने कहा, "निगरानी व्यवस्था ऐसी होनी चाहिए जो लोगों से सीधे संपर्क में रहे न कि अफसरशाही से। उदाहरण के लिए राष्ट्रीय परिवार स्वास्थ्य सेवा रिपोर्टों के जरिए देश में स्वास्थ्य के बारे में हमें जो भी जानकारी प्राप्त है उसे राज्य और केंद्र के स्तर पर देखा जाता है लेकिन शायद ही कभी जिला या इससे नीचे के स्तर पर इस पर विचार किया गया हो। यदि सूचना कार्यवाई के लिए प्रेरित करती है तो इसका इस्तेमाल स्थानीय स्तर पर होना चाहिए और यह स्थानीय स्तर पर उपलब्ध भी होनी चाहिए। सूचना प्रणाली को इस तरह तैयार किया जाना चाहिए जो उत्तरदायी हो और इसके लिए जिला स्तर पर और इसी क्रम में आगे भी, रिपोर्ट प्राप्त करने की व्यवस्था विकसित की जानी चाहिए।

प्रधानमंत्री ने कहा कि भारत के कई गांवों में आज भी प्राथमिक स्वास्थ्य सेवा उपलब्ध कराने के लिए साधारण सी सुविधाएं उपलब्ध नहीं हैं। इसका कारण यह है कि उप स्वास्थ्य केंद्र की सबसे छोटी इकाई स्थापित करने के लिए भी हमने जनसंख्या को मानक बनाया है न कि बस्ती या गांव को और इस इकाई का प्रभारी अधिकरी यानी एएनएम (सहायक नर्स या दाई) ऊपर के अधिकारियों द्वारा बनाए गए ड्यूटी चार्ट के अनुसार कार्य करता है और इसलिए स्थानीय लोगों की स्वास्थ्य संबंधी जरूरतों को पूरा नहीं कर पाता। प्राथमिक स्वास्थ्य सेवा केंद्र का सबसे नजदीकी अस्पताल व्यवस्था की खामी का ज्वलंत उदाहरण है, जिसे अस्पताल में मरीजों की देखभाल भी करनी पड़ती है और अन्य बाहरी कामकाज भी देखने पड़ते हैं, फलस्वरूप वह दोनों में से कोई भी काम नहीं कर पाता। इसके अस्पतालों के बिस्तर बहुधा इस्तेमाल ही नहीं होते। सामुदायिक स्वास्थ्य केंद्र की दूसरी इकाई काफी कुछ पूरी तरह से सज्जित अस्पताल की तरह है लेकिन इसमें कभी कभार ही मरीजों को भर्ती करने के लिए बिस्तर उपलब्ध हो पाते हैं, यहां भी सुधार की जरूरत है।

मिशन का उद्देश्य उन सभी गांवों में एक– एक मान्यता प्राप्त सामाजिक स्वास्थ्य कार्यकर्ता नियुक्त करना है जहां अभी तक पेशेवर स्वास्थ्यकर्मी नहीं हैं। दरअसल इस कार्य में प्रशिक्षित महिलाओं की सेवा ली जाएगी और सरकार उन्हें प्रोत्साहन राशि देगी। ये प्रशिक्षित महिलाएं हमारे गांव में स्वास्थ्यकर्मी के रूप में कार्य करेंगी।

उन्होंने कहा कि इस मिशन में एक महत्वपूर्ण पहल और की गई है और यह पहल है समेकित कोष का गठन। यह कोष उप स्वास्थ्य केंद्र की सबसे नजदीकी इकाई में सुविधाएं उपलब्ध कराने के लिए पैसा प्रदान करेगा। यह सुनिश्चित करना भी जरूरी है कि **एएनएम** को स्थानीय स्तर पर कुछ स्वायत्ता दी जाए ताकि वह स्थानीय स्वास्थ्य संबंधी जरूरतों को पूरा करने के लिए स्वयं कुछ पहल कर सके।

सार्वजनिक स्वास्थ्य संबंधी बुनियादी सुविधाओं को मजबूत बनाने की दिशा में प्राथमिक या सामुदायिक स्वास्थ्य केंद्रों को मजबूत बनाना एक महत्वपूर्ण कदम होगा। "मजबूत बनाना", "सुधार करना" आदि कुछ ऐसे शब्द हैं जिनका सरकार में कोई ज्यादा अर्थ नहीं होता सिवाय इसके कि कुछ अतिरिक्त खर्च। लेकिन इस मिशन की विशेषता यह है कि इसके तहत भारतीय सार्वजनिक स्वास्थ्य मानकों को तय किया जाएगा, जो व्यक्तिगत मानकों, उपकरणों के मानकों और साथ ही उन समुदायों के नियंत्रण संबंधी मानकों को निर्धारित करेगा, जिनके लिए यह अस्पताल बनाए गए हैं। इससे हम अपने गांववासियों को चौबीसों घंटे अच्छी सेवाएं उपलब्ध करा सकेंगे।

प्रधानमंत्री ने कहा कि स्वास्थ्य संबंधी कार्यों पर होने वाले खर्च को एकल घरेलू उत्पाद के 0.9 प्रतिशत से बढ़ाकर 2 प्रतिशत करने के लिए सरकार राष्ट्रीय साझा न्यूनतम कार्यक्रम के तहत कटिबद्ध है। इस दिशा में इस वर्ष के बजट में शुरुआत की गई है और स्वास्थ्य के लिए 2,000 करोड़ रुपये से अधिक का बजटीय प्रावधान रखा गया है। सरकार संसाधन बढ़ाने के लिए हमेशा प्रयासरत रहेगी और राज्य सरकारों से आग्रह करेगी इस पैसे का समय से इस्तेमाल करें।

प्रधानमंत्री ने कहा कि हमारे देश में इस मिशन को सफल बनाने के सबसे ज्यादा अवसर हैं क्योंकि हमारे पंचायती संस्थानों के अधिकांश सामुदायिक नेता और सरकारी तथा निजी क्षेत्र में स्वास्थ्य सेवाओं से जुड़े चिकित्साकर्मी इस कार्य में अपना योगदान देने के इच्छुक हैं। मिशन इन लोगों की सृजनात्मक ऊर्जा का इस्तेमाल करेगा और लोगों के स्वास्थ्य सुधार के लिए एकजुट प्रयास के वास्ते आम आदमी से एक आंदोलन की शुरुआत करेगा। ❑

कुरुक्षेत्र

ग्रामीण विकास मंत्रालय की प्रमुख मासिक पत्रिका

वर्ष : 51 ● अंक : 7 ● पृष्ठ : 48

वैशाख–ज्येष्ठ 1926–27

मई 2005

संपादक
स्नेह राय

उप संपादक
जयसिंह

संपादकीय पत्र–व्यवहार
संपादक, कुरुक्षेत्र
कमरा नं. 655/661, 'ए' विंग,
गेट नं. 5, निर्माण भवन
ग्रामीण विकास मंत्रालय
नई दिल्ली–110011
दूरभाष : 23015014,
फैक्स : 011–23015014
तार : ग्राम विकास
वेबसाइट : Publicationsdivision.nic.in
ई–मेल : dpd@sh.nic.in dpd@pub.nic.in

संयुक्त निदेशक (उत्पादन)
एन.सी. मजुमदार

व्यापार प्रबंधक
जगदीश प्रसाद
दूरभाष : 26105590, फैक्स : 26175516

आवरण
अशोक त्यागी

सज्जा
संतोष कुमार सिंह

मूल्य एक प्रति : सात रुपये
वार्षिक शुल्क : 70 रुपये
द्विवार्षिक : 135 रुपये
त्रिवार्षिक : 190 रुपये
विदेशों में (हवाई डाक द्वारा)
पड़ोसी देशों में : 500 रुपये (वार्षिक)
अन्य देशों में : 700 रुपये (वार्षिक)

इस अंक में

● बाल मज़दूरों का बदहाल बचपन	डा. मुकेश कुमार शर्मा	4
● बाल श्रमिक और न्याय व्यवस्था	डा. अनामिका प्रकाश	7
● क्यों बिकता है बचपन	राजेन्द्र सिंह बिष्ट	9
● सफरनामा मई दिवस का	कैलाश जैन	11
● असंगठित क्षेत्र में श्रमिकों की समस्याएं	रामू कुमार	12
● रोजगार गारंटी अधिनियम आशाएं और आशंकाएं	ज्यां द्रेज़	13
● गरीबी निवारण के लिए रोजगारोन्मुख विकास	संतोष मेहरोत्रा	17
● रोजगार गारंटी कानून ग्रामीण नियोजन की ओर एक महत्वपूर्ण कदम	डा. कामेश्वर पंडित और डा. अखिलेश कुमार सिंह	20
● ग्रामीण गरीबों को रोजगार की गारंटी	डा. जी.एल. पुणताम्बेकंर और डा. डी.के. नेमा	22
● ग्रामीण बेरोज़गारी : एक सामाजिक समस्या	डा. एस.के. सिंह और शशिबाला	25
● बांस विकास : समस्याएं और संभावनाएं	आर.बी.एल. गर्ग	29
● भारत के गांव : चौपाल से ई–चौपाल की ओर	हेना नक़वी	30
● सशक्त न्यायालय और मानवाधिकारों का संरक्षण	डा. प्रमोद कुमार अग्रवाल	32
● काष्ठकला उद्योग : स्वरोजगार को बढ़ावा	डा. नितिन कुमार	36
● मशरूम खेती : कृषि का आधुनिक आयाम	जीवन एस. रजक	38
● दिल्ली के रैन बसेरे	पवन कुमार	40
● चेहरों का रहस्य खोलता शिल्पी	रवि भारती	42
● लघु उद्योग क्षेत्र : संरक्षण से संवर्धन की ओर	चंचल कुमार शर्मा	43
● मानवाधिकार : नई दिशाएं	नन्द्रेश निगम	46
● मानवाधिकार का प्रश्न कितना पास कितना दूर?	देव प्रकाश	48

कुरुक्षेत्र की एजेंसी लेने, ग्राहक बनने और अंक न मिलने की शिकायत के बारे में व्यापार प्रबंधक, (वितरण एवं विज्ञापन) प्रकाशन विभाग, पूर्वी खंड–4, लेवल–7, रामकृष्णपुरम, नई दिल्ली–110 066 से पत्र–व्यवहार करें। विज्ञापनों के लिए सहायक विज्ञापन प्रबंधक, प्रकाशन विभाग, पूर्वी खंड–4, लेवल–7, रामकृष्णपुरम, नई दिल्ली–110 066 से संपर्क करें। दूरभाष : 26105590, फैक्स : 26175516

कुरुक्षेत्र में प्रकाशित लेखों में व्यक्त विचार लेखकों के अपने हैं। यह आवश्यक नहीं कि सरकारी दृष्टिकोण भी वही हो।

मत–सम्मत

फरवरी–05, कुरुक्षेत्र का अंक पढ़ा। इस अंक में डा. उमेश चन्द्र अग्रवाल का लेख 'भारतीय अर्थव्यवस्था में गरीबी निवारण की रणनीति' एवं सुदय प्रसाद का लेख 'ग्रामीण क्षेत्र में मछली पालन' काफी अच्छे लगे। साथ ही डा. पुष्पा सिन्हा का लेख 'दम तोड़ती ग्रामीण परियोजनाएं' पढ़कर दुख भी हुआ कि सरकारी स्तर पर इतना कुछ करने के बावजूद ग्राम–विकास के लिए बहुत कम काम हो पा रहा है।

चन्द्र शेखर सिंह
पश्चिम पटेल नगर, आदर्श कॉलोनी, पटना–24

•••

कुरुक्षेत्र का फरवरी 2005 अंक पढ़ा। इस अंक के सभी लेख बेहद सटीक एवं ज्ञानप्रद थे। इस अंक में 'प्रकृति का कहर–सुनामी लहर' का खौफनाक मंजर देखा। सागर में छुपे रहस्यों से भी रूबरू हुआ। आपने इन प्राकृतिक आपदाओं का माल्थसीय उपचार बताकर लोगों को सतर्क करने का भी प्रयास किया है। वास्तव में आज बढ़ती जनसंख्या ही इन सब दुखों की जड़ है। जब तक इस पर रोक हेतु कठोर कदम नहीं उठाए जायेंगे, प्रकृति अपना संतुलन स्थापित करने के लिए ऐसे ही कदम उठाती रहेगी।

"भारतीय अर्थव्यवस्था में गरीबी निवारण की रणनीति" लेख में लेखक ने बड़े ही सलीके से यहां की गरीबी तथा उसके उन्मूलन के प्रयासों को आंकड़ों के रूप में प्रस्तुत कर बड़ा ही सराहनीय कार्य किया है। वस्तुतः आज आजादी के 57 वर्ष बीत जाने के बाद भी तथा सरकार द्वारा इसे दूर करने के लिए उठाये गये ठोस कदमों के बावजूद एक चौथाई से ज्यादा आबादी गरीबी रेखा से नीचे का जीवन बिता रही है। इसका एक सर्वप्रमुख कारण गरीबों में ऊपर उठने की इच्छा शक्ति का ही अभाव है।

अरविन्द कुमार
मिन्दासपुर, बेलागंज, गया, (बिहार)

•••

ग्रामीण विकास मंत्रालय की प्रमुख मासिक पत्रिका "कुरुक्षेत्र" के वर्ष 51 अंक–2 में प्रकाशित लेख, घासों में श्रेष्ठ सुगंधीय फसल नींबू घास (लेमनग्रास) पढ़ा तथा इस निष्कर्ष पर पहुंचा कि स्वयं–सहायता समूह के माध्यम से इसकी खेती की शुरुआत कराई जा सकती है तथा संबंधित किसान परिवारों को स्वावलंबी बनाया जा सकता है।

"चेतना शिक्षा सेवा संस्थान" कानपुर नगर, कानपुर देहात, औरेया तथा इटावा जिलों में कार्य करते हुए कई स्वयं–सहायता समूहों के माध्यम से किसानों को लाभ पहुंच रहा है।

आई.पी.एस. सेंगर
136, सिविल लाइन, कानपुर

•••

'कुरुक्षेत्र' का फरवरी–2005 का अंक दृष्टिगत हुआ। ग्रामोत्थान के लिए तत्पर इस पत्रिका ने रोचक ज्ञानवर्द्धन किया। 'संपादकीय' में ब्रेल के आविष्कार का संकेतक के रूप में प्रयोग अत्यन्त ही मर्मस्पर्शी लगा। "गरीबों के कल्याण में प्रौद्योगिकियां" निबन्ध ने एक बार पुनः यह सिद्ध कर दिया कि विकास का पथ किसी का परतंत्र नहीं यह भी गरीब जनता की गलियों से होकर ही गुजरता है। इस अंक के सभी लेख सराहनीय व तथ्यपूर्ण थे पर इसमें 'भारतीय अर्थव्यवस्था में गरीबी निवारण की रणनीति वाला निबन्ध भारतीय अर्थव्यवस्था का सही मापक सिद्ध होता है। गरीबी उन्मूलन के जो भी सुझाव इसमें बताए गये हैं वे निश्चित ही श्रेयस्कर हो सकेंगे अगर सही प्रयोग किया जाय। इन्हीं लेखों की गुणवत्ता ने कुरुक्षेत्र की ख्याति में अनिर्वचनीय वृद्धि की है।

अमित कुमार द्विवेदी
(शोध–छात्र, वाणिज्य), लखनऊ विश्वविद्यालय, लखनऊ

•••

फरवरी–2005 अंक में प्रकाशित आलेख 'गरीबों के कल्याण में प्रौद्योगिकियां' ज्ञानवर्धक लगा। सच है कि वर्तमान समय में विकास की गति को प्रौद्योगिकी के माध्यम से ही अधिकतम लोगों तक पहुंचाया जा सकता है और पहुंचाया जाना चाहिए भी। परन्तु यह कार्य पर्यावरण की कीमत पर न हो। इसके लिए सभी लोगों को जागरूक रहकर व्यक्तिगत व सामूहिक स्तर (दोनों) पर अथक प्रयत्न करने होंगे। पत्रिका में यदि आलेख के साथ ही वैज्ञानिक संस्थान के पते व वेबसाइट का नाम दिया जाता तो वह और सार्थक होता।

शुभु कुमार चौधरी,
मुंगेर, (बिहार)

•••

फरवरी अंक पढ़ा। स्वास्थ्य के अंतर्गत जहां 'एलर्जी' के संबंध में तथ्यपरक जानकारी मिली वहीं 'रेबीज' पर भी सारगर्भित प्रस्तुतीकरण था। पुस्तक चर्चा के अंतर्गत हम जैसे युवाओं के लिए 'सामान्य अध्ययन' पुस्तक की चर्चा अत्यन्त उपयोगी सिद्ध होगी।

आज ग्रामीण विकास मंत्रालय की योजनाएं चलायी जा रही हैं परंतु उनका क्रियान्वयन अच्छी प्रकार से न होने से उनका संपूर्ण लाभ ग्रामीणों को नहीं मिल पा रहा है। इसी पर केन्द्रित डा. पुष्पा सिन्हा का 'दम तोड़ती ग्रामीण परियोजनाएं' लेख अत्यन्त उपयोगी रहा। वास्तव में यदि कारणों पर ध्यान देकर उनका निराकरण करने का प्रयास किया जाए तो सच में भारत के गांव हो जाएंगे।

दिलीप कुमार जायसवाल
चिरैयाकोट, मऊ, (उ.प्र.)

•••

कुरुक्षेत्र का फरवरी अंक पढ़ा। यह अंक बड़ा ही रोचक लगा। इससे हमें सुनामी लहरों के बारे में विस्तृत जानकारी मिली। प्रौद्योगिकी और स्वास्थ्य संबंधी लेख भी बहुत अच्छे लगे। डा. हरीश अग्रवाल जी का निबंध "भारत के डिजिटल गांव" को पढ़ने के पश्चात् भारत के भविष्य के प्रति बहुत ही आशावान हूं।

संजीव पटेल, राजापुर पुल, पटना–01

संपादकीय

क्या हमें प्रसन्न रहने के लिए हमेशा धन की आवश्यकता होती है? कभी–कभी होती भी हो। लेकिन, हम अधिक अप्रसन्न इसलिए होते हैं जब हम अपने आस–पास की ढेर सारी अच्छी चीजों का, जो निःशुल्क हैं आनन्द नहीं उठा पाते। सुबह की शीतल हवा का स्पर्श, विकसित होते पेड़ों को देखना, प्राकृतिक फूलों की खुशबू, गली में या बच्चों के पार्क में बच्चों की मासूम मुस्कराहट, मूक चांदनी, बहती हुई धारा, त्योहार के अवसरों पर मेले और सामाजिक उत्सवों, धार्मिक प्रवचनों, पड़ोस में या पूजा स्थलों पर होने वाले भजन और कीर्तन, सभी आनंद के अपरिमित अवसर देते हैं, हम उन्हें छोड़ देते हैं या उनकी उपेक्षा कर देते हैं क्योंकि ये मुफ्त उपलब्ध हैं। हमारा यह विश्वास है कि केवल वही खुशियां बेहतर हैं जिनके लिए रुपए खर्च किए गए हैं। हम समझते हैं कि आनंदमय वही है जिसे कीमत देकर प्राप्त किया गया हो। कितना दुर्भाग्यशाली है यह। सो, अगली बार जब आप वंचित महसूस करें बाहर निकलें और इन उदारताओं का आनंद लें। एक बार जब बुनियादी आवश्यकताओं को पूरा कर लिया जाए तो हमारे आस–पास मुफ्त में पाने के लिए इतनी खुशियां उपलब्ध हैं।

क्या परोपकार हमारी जरूरतों/आवश्यकताओं से अतिरिक्त को देने तक सीमित होना चाहिए? उन वस्तुओं की जिनकी किसी को जरूरत है, उसे हमारे द्वारा अपना अधिशेष देना भी सामाजिक निर्धनता को कम करने में बड़ी भूमिका अदा करता है। परन्तु तब क्या हो? जब किसी के पास कुछ अतिरिक्त नहीं हो, समाज में केवल गरीब, बहुत गरीब और दीनहीन हो सकते हैं। यदि किसी के पास एक ही रोटी है, जो उसके परिवार के लिए भी काफी नहीं है, तो उससे बांटने की अपेक्षा कैसे की जा सकती है? अपना अर्जन दूसरों के साथ बांटने की अपनी अनिच्छा को हम इस आधार पर हमेशा तर्कसंगत ठहरा सकते हैं कि यह हमारी अपनी आवश्यकताओं से भी काफी कम है। सामाजिक असमानताएं हमेशा सामाजिक अशांति को जन्म देती हैं। जब सामाजिक संघर्ष उग्र हो तो कोई भी सुरक्षित नहीं है, कम संपत्ति वाला भी नहीं। सभी ऐतिहासिक क्रांतियों का यह चरित्र रहा है। अवैध परिस्थितियों का निर्माण करने वाली नकारात्मक शक्तियों को रोकने का एकमात्र तरीका यह सुनिश्चित करना है कि जब हमने आधा पेट खाया हो तो हमारा पड़ोसी भूखा नहीं रहे। आपस में साझा करना, बांट कर खाना सामाजिक लूटमार के विरुद्ध सर्वोत्तम सुरक्षा है। विकासशील देशों से विदेशी सहायता इस बात की मौन स्वीकृति है कि बहुत अमीर और बहुत गरीब का समान ग्रह पर हमेशा के लिए सह–अस्तित्व नहीं हो सकता है जबकि अन्य राष्ट्र इसे भूमंडलीय स्तर पर करते हैं। हममें से प्रत्येक इसे अपने परिप्रेक्ष्य में सूक्ष्म स्तर पर कर सकता है।

हमारे आस–पास के लोग इतने कृतघ्न हैं? जिनकी हमने जरूरत के समय अपनी सामर्थ्य से अधिक मदद की वे हमारे संकट के क्षणों में, जब हमें उनकी जरूरत है, हमारे आस–पास कहीं भी नहीं हैं। आश्चर्यजनक रूप से कुछ लोग जिनके लिए हमने कुछ नहीं किया है, हमारी जरूरत के समय अक्सर हमारी मदद के लिए आ जाते हैं। इस अद्‌भुत स्थिति की व्यवस्था कोई कैसे करता है? यह सब एक बैंक में जमा करने जैसा है। हम उन रुपयों को सभी वापस नहीं पाते जो हमने जमा कर रखा था और फिर भी हमारा बैलेंस सार्थक है, हमारे चैकों को मान्यता दी जाती है और हमें उनका भुगतान भी प्राप्त होता है।

कहीं कोई है जो दूसरों के लिए किए गए हमारे अच्छे कार्यों का लेखा–जोखा रखता प्रतीत होता है। हमारी जरूरत के समय हम तक मदद पहुंचती है, जो आवश्यक नहीं कि उन्हीं लोगों से हो जिनकी हमने कभी मदद की थी। अतएव दयालुता में निवेश करना और दूसरों की मदद करते रहना सर्वोत्तम है, जब भी हम इतना कर सकें। यदि दूसरों को दी गई मदद के मामले में हमारी मंशा सकारात्मक है तो हमारी जरूरत के समय हम तक निश्चय ही पहुंचेगी।

बाल मज़दूरों का बदहाल बचपन

डा. मुकेश कुमार शर्मा

प्रायः कहा जाता है कि बच्चे देश का भविष्य होते हैं और समाज तथा देश अपने बच्चों का जिस प्रकार पालन–पोषण करेगा, शिक्षा प्रदान करेगा, संस्कार देगा, वे बच्चे देश तथा समाज को उसका उसी के अनुसार प्रतिफल देंगे। जिस आयु में बच्चों को स्कूल की बेंच पर बैठकर अपना पाठ याद करना चाहिए तथा एक आदर्श नागरिक बनने हेतु सुसंस्कार ग्रहण करने चाहिए उसी आयु में वे बच्चे होटल अथवा रेस्टोरेंट की मेजों की गंदगी साफ करते हैं, गन्दे बर्तनों को धोते हैं, कल–कारखानों में दूषित वायुमंडल में खतरनाक मशीनों से जूझते हैं अथवा मालिक और सेवायोजकों की झिड़कियां सुनते हैं। इस प्रकार के वातावरण में देश के इन नौनिहालों के कोमल मन पर पड़ने वाले संस्कारों तथा शिक्षा का अनुमान सहज लगाया जा सकता है।

भारत में बाल–श्रमिकों की वर्तमान स्थिति

एक अनुमान के अनुसार भारत में वर्तमान में 6 करोड़ से अधिक बाल–श्रमिक हैं, जिनकी उम्र 5 वर्ष से .14 वर्ष के मध्य की है। कुछ विशेषज्ञों की राय में बाल–श्रमिकों की वास्तविक संख्या इन आंकड़ों से काफी अधिक है। ये बाल श्रमिक हथकरघा, होटल, रेस्टोरेंट, साइकिल–मोटर मरम्मत, मछलीपालन, जूता पालिश, चर्मकार तथा इसी प्रकार के अन्य अनेक उद्योग धंधों में लगे हुए हैं। मध्य प्रदेश के बीड़ी उद्योग झारखंड व पश्चिम बंगाल की कोयला खादानों, तमिलनाडु में दिया–सलाई व आतिशबाजी उद्योग, कश्मीर के गलीचा उद्योग, असम के चाय–बागान, मेघालय के खानों, मिर्जापुर–भदोही के कालीन उद्योग तथा दिल्ली की विभिन्न लघु उद्योग इकाइयों में बड़ी संख्या में बाल मजदूर अत्यंत दयनीय कार्य स्थितियों में कार्यरत हैं, जो उनके स्वास्थ्य पर बेहद प्रतिकूल प्रभाव डाल रही हैं। श्रम मंत्रालय के एक सर्वेक्षण के अनुसार भारत के हर तीसरे परिवार में एक बाल–श्रमिक है तथा पांच से पन्द्रह आयु का प्रत्येक चौथा बालक मजदूर है। कई स्थानों पर स्थिति इतनी भयावह है कि वहां स्थित कुछ कारखानों में नब्बे प्रतिशत तक बाल मजदूर हैं। भारत के ग्रामीण क्षेत्रों में भी बाल–मजदूर बड़ी संख्या में हैं तथा वे कृषि तथा कृषि से संबंधित अन्य लघु उद्योगों में कार्यरत हैं। ग्रामीण क्षेत्रों में बढ़ रही बेरोजगारी से प्रभावित तथा शहरों की चमक–दमक भरी जिंदगी से आकर्षित होकर ग्रामीण क्षेत्रों में बाल मजदूरों का प्रवाह शहरी क्षेत्रों की ओर तीव्रता से बढ़ा है। इस तरह के बाल–श्रमिकों में से कुछ तो परिवार की सहमति से आते हैं तो कुछ यों हीं घर छोड़कर भाग आते हैं। इस प्रकार के बाल मजदूरों में से जो घर छोड़कर भाग आते हैं अधिकांश असामाजिक तत्वों के हाथों में पड़ जाते हैं तथा ये बच्चे अनेक गैर–कानूनी तथा अपराधिक गतिविधियों में लिप्त होकर समाज के लिए अभिशाप बन जाते हैं।

बाल–श्रम का प्रारंभ तब से माना जाता है जब से विश्व में औद्योगिक क्रांति के परिणामस्वरूप नवीन उद्योगों की स्थापना होना प्रारंभ हुआ। पूंजीवादी वर्ग द्वारा अपना मुनाफा बढ़ाने के उद्देश्य से मजदूरों के बच्चों को भी अपने कल कारखानों में मजदूरी पर रखना प्रारंभ कर दिया। इस प्रकार के बाल–श्रमिकों से नियोजकों का काफी लाभ हुआ है, जिसका एक प्रमुख कारण इन बाल–श्रमिकों का सस्ता होना है। साथ ही बाल–श्रमिकों के श्रम के महत्व तथा श्रम कानूनों की कोई जानकारी न होने के कारण वे सदैव अपने मालिकों के कठोर नियंत्रण में रहते हैं। बाल मजदूरों के साथ किसी भी प्रकार की हड़ताल यूनियनबाजी का कोई खतरा नहीं होता है। इस प्रकार कम वेतन पर अधिक समय तक ज्यादा काम लेने के कारण अनेक नियोजक बाल मजदूरों को अपने यहां प्राथमिकता देते हैं, लेकिन उनके इस अर्थिक लाभ की कितनी बड़ी सामाजिक कीमत देश तथा समाज को चुकानी पड़ती है, इसका आकलन करना आसान नहीं है।

इस प्रकार भारत में बाल–श्रमिकों की व्यथा बेहद व्यथित करने वाली है। सामंती मानसिकता वाले लोगों के दिमाग से यह बात अभी गई नहीं है तथा इसी के चलते वे घरों में घरेलू नौकरों के तौर पर कार्य कर रहे बच्चों का शोषण व उत्पीड़न कर रहे हैं। इन घरेलू बाल श्रमिकों की मानसिक, दैहिक तथा यौन शोषण भी किया जाता है। वास्तविकता में यह बाल–श्रम मानवीय शोषण का सबसे घिनौना तथा विभत्स रूप है। कई मामलों में तो यह प्रथा गुलामी तथा दासता के काफी निकट है। भारत के उच्च तथा मध्यम परिवारों में यह प्रथा व्यापक तौर पर प्रचलित है। तथा वर्तमान में यह निम्न मध्यम वर्ग में भी तीव्रता से पैर पसार रही है। इस वर्ग द्वारा घरेलू नौकरों को बेहद अल्प वेतन तथा अस्थाई तौर पर रखा है। बच्चों को भगवान का स्वरूप तथा देश का भविष्य मानने वाली अवधारणा के मध्य बाल–श्रम का समाज में बड़े पैमाने पर प्रचलन एक गंभीर विरोधाभास है, जिस पर समाज–शास्त्रियों, बुद्धजीवियों, गैर–सरकारी संगठनों, स्वयंसेवी संस्थाओं तथा सरकार का व्यापक तौर पर गंभीर विचार–विमर्श करने की सख्त आवश्यकता है, जिससे इस सामाजिक अभिशाप को दूर किया जा सके।

भारत सरकार द्वारा किये जा रहे प्रयास

भारत सरकार ने बाल–श्रमिकों की समस्या सुलझाने के लिए हमेशा से प्रभावशाली नीति

अपनाई है और बालश्रम को मिटाने के लिए हमेशा संवैधानिक, कानूनी और विकासात्मक उपायों के पक्ष में कदम उठाये हैं। बाल–श्रम (निषेध और नियमन) अधिनियम, 1986 में जोखिम वाले व्यवसायों में बच्चों के काम करने की मनाही के अलावा अन्य क्षेत्रों में भी उनको काम देने से संबंधित कानून बनाये गये हैं। अधिनियम में 13 व्यवसायों और 57 प्रक्रियाओं में बाल–श्रमिकों को काम लगाने की मनाही है। राष्ट्रीय कानूनों और विनियमों को अंतराष्ट्रीय श्रम मानकों के समकक्ष करने के लिए, अब बाल–श्रमिक तथा संबद्ध मामलों के बारे में अंतराष्ट्रीय श्रम संगठन की 6 संधियों की पुष्टि की जा चुकी है।

वर्ष 1987 में बाल–श्रम के बारे में एक राष्ट्रीय नीति बनाई गई, जिसमें बाल–श्रमिकों के लाभ के लिए कानूनी प्रावधानों को लागू करने के अलावा, सामान्य विकास कार्यक्रमों और बाल–श्रमिकों की अधिकता वाले क्षेत्रों में परियोजना–आधारित कार्य–योजना पर ध्यान देने जैसी बातें शामिल की गई है। सरकार का मानना है कि किसी भी देश के आर्थिक विकास, सामाजिक एकजुटता और राजनीतिक स्थिरता के लिए बच्चों का शारीरिक, मानसिक और भावनात्मक विकास की सही मायनों में एक नींव है। जब तक सही समय पर यह विकास नहीं होगा, मानवता की आदतें, मूलभूत समस्याऐं, दीर्घावधि समस्याओं के रूप में बनी रहेंगी। जहां तक बच्चों के विकास का प्रश्न है, बच्चों की आवश्यकताओं और उनके अधिकारों पर ध्यान देना बहुत जरूरी है। दीर्घावधि सफलता के लिए बच्चों के विकास और उनकी शिक्षा के महत्व को समझाते हुए, सरकार ने दो विशेष कार्य योजनाएं आरम्भ की हैं। ये हैं–(i) राष्ट्रीय बाल–श्रम परियोजनाऐं और (ii) बाल–श्रमिकों के लाभ और कल्याण के लिए अनुदान सहायता योजना।

परियोजना कार्य–योजना के अंतर्गत बाल–श्रमिकों के पुनर्वास के लिए विभिन्न क्षेत्रों में राष्ट्रीय बाल–श्रम परियोजनाएं चलाई जा रही हैं। बाल–मजदूरी से मुक्त कराए गए बच्चों के लिए अनौपचारिक शिक्षा, व्यावसायिक प्रशिक्षण और पूरक पोषाहार आदि उपलब्ध कराने के लिए विशेष विद्यालय खोलने का प्रमुख कार्य हाथ में लिया गया है। इसका उद्देश्य अधिकतम संख्या में बच्चों को औपचारिक शिक्षा की मुख्य धारा में लाने का है।

अनुदान सहायता के अंतर्गत स्वयंसेवी संगठनों को परियोजना लागत के 75 प्रतिशत तक की वित्तीय सहायता दी जा रही है, ताकि इस राशि से कामकाजी बच्चों के लिए ऐसी कल्याण परियोजनाऐं शुरू की जा सकें जिनके माध्यम से उन्हें अनौपचारिक शिक्षा, पूरक पोषाहार, स्वास्थ्य सुविधा और व्यावसायिक कौशल का प्रशिक्षण उपलब्ध कराया जा सकें। पचास से अधिक स्वैछिक संगठनों को 2002–03 के दौरान इस योजना के तहत सहायता उपलब्ध कराई गई। बाल श्रम की समस्याओं को हल करने की सरकार की प्रतिबद्धता शासन के राष्ट्रीय एजेंडा (1998) संबंधी घोषणा भी परिलक्षित होती है। एजेंडा में कहा गया है कि सरकार इस बात की पक्की व्यवस्था करना चाहती है कि कोई भी बच्चा निरक्षर, भूखा या चिकित्सा सुविधा के अभाव में न रहे, और वह बाल–श्रम को समाप्त करने के उपाय भी करेंगे।

भारत के उच्चतम न्यायालय ने भी समयबद्ध कारवाई की आवश्यकता पर जोर दिया है। रिट (सिविल) संख्या 465/1986 पर अपने 10 दिसम्बर 1996 के फैसले में न्यायालय ने कुछ निर्देश दिए हैं, जिनमें बताया गया है कि खतरनाक धंधों में काम कर रहे बच्चों को उस काम से किस तरह हटाकर उनका पुनर्वास किया जाए और किस तरह गैर–खतरनाक काम करने वाले बच्चों की काम–काज की दशाओं को नियंत्रित किया जाए और उनमें सुधार लाया जाए। दसवीं पंचवर्षीय योजना में खतरनाक धंधों में लगे बाल–श्रमिकों को पूर्णतया हटा लेने का लक्ष्य रखा गया है, जिसके लिए केंद्रीय और एकजुट प्रयास किया जायेगा। लक्ष्य दूसरे व्यवसायों से भी धीरे–धीरे पूरी बाल–श्रमिकों को हटा लेने का भी है। अंतर्राष्ट्रीय श्रम संगठन, यूएस–डीओएल, राज्य सरकारों और गैर–सरकारी संगठनों के सहयोग और भागीदारी से बाल–श्रमिकों के लाभार्थ योजनाएं चलाने के लिए 602 करोड़ रुपये का बढ़ा हुआ बजट आबंटन किया गया है। बाल श्रम को समाप्त करने के प्रयासों को मानव संसाधन विकास मंत्रालय द्वारा चलाई जा रही 'सर्व शिक्षा अभियान' योजना के साथ जोड़ा जाएगा। इसी प्रकार जिला स्तर पर ग्रामीण विकास विभाग के गरीबी हटाने के कार्यक्रमों के साथ इसे मिलाया जायेगा और यह बाल श्रम समाप्त करने की रणनीति का एक महत्वपूर्ण अंग होगा।

निष्कर्ष तथा सुझाव

यह निर्विवाद सत्य है। कि बाल–श्रम भारतीय समाज पर एक अभिशाप है। यह स्थिति उस समय और गम्भीर हो जाती है। जब बाल–श्रमिक उन उन परिस्थितियों में (विशेषकर खतरनाक कल–कारखानों) कार्य करते हैं जो उनके स्वास्थ्य तथा भविष्य के लिए बेहद खतरनाक होती है। इन स्थितियों में ये बाल–श्रमिक बचपन के बाद सीधे वृद्धावस्था में पर्दापण करते हैं तथा जवानी को कभी नहीं देख पाते हैं। यद्यपि देश में बच्चों को उनके मौलिक अधिकारों को दिलाने के लिए अब तक अनेक कानूनों तथा अधिनियमों का निर्माण, उन्हें प्रभावी तथा उपयोगी बनाने हेतु समय–समय पर उनमें संशोधन, विभिन्न कार्यक्रमों तथा योजनाओं का संचालन करने जैसे अनेक प्रयास भी किए गए है, लेकिन वास्तिविक रूप में हम पूरी तरह सफल नही हो पाये है। यह भी एक कटु सत्य है कि समाज से गरीबी, बेराजगारी ,आर्थिक विषमता, अशिक्षा जैसे बुनियादी समस्याओं को दूर किये बिना बाल श्रम का पूर्णतः उन्मूलन असंभव है। लेकिन इन समस्याओं को काफी हद तक दूर किया जा सकता है तथा इनके परिणामस्वरूप बाल–श्रमिकों की संख्या में एक सकारात्मक कमी आ सकती है। इसके लिए कुछ सुझाव निम्नांकित हैं–

- बाल–श्रम के स्थायी के लिए अति आवश्यक है कि 14 वर्ष तक के बच्चों के लिए वास्तविक तौर पर अनिवार्य शिक्षा उपलब्ध कराई जायें तथा समाज के कमजोर तथा गरीब के बच्चों के लिए इसे मुफ्त होने के साथ–साथ छात्रवृति का प्रावधान भी किया जाये तथा इस छात्रवृति का वितरण पूर्णतः निष्पक्षता, पारदर्शिता तथा ईमानदारी के साथ अनिवार्य तौर पर किया जाये।
- 14 वर्ष तक की आयु के बालकों को शिक्षा न दिलवाने वाले अभिभावकों तथा माता–पिता के खिलाफ आर्थिक दण्डात्मक कार्यवाही की जाये। जिससे प्रत्येक बालक को शिक्षा दिलाने का लक्ष्य पूरा किया जा सके।
- भारतीय समाज से अनेक सामाजिक

आर्थिक समस्याओं में बेलगाम वृद्धि पर नियंत्रण लगाना अति आवश्यक है। इसके अभाव में बाल-श्रम पर रोक लगाने के समस्त प्रयास बेमानी तथा निरर्थक सिद्ध होंगे।

● बच्चों को श्रमसाध्य या खतरनाक कार्यों में लगाने पर कठोर प्रतिबंध लगाने की आवश्यकता है तथा इसके पर्याप्त निगरानी व्यवस्था भी रखनी होगी। साथ ही इस प्रकार के सेवा नियोजकों के लिए कठोर, प्रभावी तथा त्वरित दण्ड का प्रावधान भी अति आवश्यक है तथा इस संबंध में यह भी ध्यान रखना होगा कि बाल-श्रमिकों की ओर से शिकायत करने शायद ही कभी कोई आए, क्योंकि इस क्षेत्र में वर्तमान में सक्रिय बहुत से गैर-सरकारी संगठनों की वास्तविकता, नीयत तथा कार्य प्रणाली बेहद संदिग्ध रही है। अतः बाल-श्रमिकों के विषय में शिकायत की प्रतीक्षा न कर प्रशासन को स्वयं ही समय-समय पर जांच करनी होगी।

● बाल-श्रम पर प्रभावी तथा कारगर रोक के लिए अति आवश्यक है कि इस संबंध में श्रम विभाग तथा स्थानीय नागरिक प्रशासन की स्पष्ट जबाबदेही सुनिश्चित की जाये और नाकारा तथा सुस्त कर्मचारियों की फौज को अधिक सक्रिय कर उन्हें कर्तव्यपालन के प्रति अधिक जवाबदेह बनाया जाये।

● समाजसेवी संस्थाओं को 'उस समाज में जहां बाल-श्रमिक बहुतायत में पाये जाते हैं', इस तरह सघन प्रचार करने की आवश्यकता है कि बच्चों का जन्म माता-पिता के लिए एक बहुत बड़ा उत्तरदायित्व है तथा इसका एहसास उन्हें होना चाहिए। बच्चों को शिक्षित करना तथा उन्हे श्रेष्ठ व सभ्य नागरिक बनाना माता-पिता की जिम्मेदारी है।

● बाल श्रम पर रोक के लिए अति आवश्यक है कि प्रत्येक परिवार में कम से कम एक सदस्य को आवश्यक रूप से नियमित तथा सतत् रोजगार मिले और उसके बदले में उसे अपने बच्चों का असमय ही मजदूरी पर भेजने को विवश न होना पड़े।

बच्चों को इस शोषण से बचाने के लिए एक समन्वित दीघकालीन नीति की आवश्यकता है। सतत आर्थिक विकास, आर्थिक व सामाजिक ढांचे का अधिक समतावादी होना, आधुनिक क्षेत्रों का तेजी से विस्तार, अनिवार्य व निःशुल्क शिक्षा, कारगर जनसंख्या नीति, गरीबी रेखा से नीचे रहने वालों की संख्या में लगातार कमी के ठोस उपाय, रोजगार अवसरों की संख्या में वृद्धि जैसे उपाय बाल-श्रम के उन्मूलन हेतु अति आवश्यक हैं। बाल श्रम से पूर्ण उन्मूलन का लक्ष्य अधिकांश देशों की तात्कालिक पहुंच से बाहर है फिर भी इस दिशा में सतत सकारात्मक प्रयास किये जाने की आवश्यकता है। जब तक समाज का हर वर्ग, हर तबका हृदय से बाल-श्रम के विरुद्ध प्रवत्त नहीं होगा, बाल-श्रमिकों की मुक्ति अकल्पनीय है।

बाल-श्रमिकों के शोषण के विरुद्ध विभिन्न सजाओं का प्रावधान अप्रभावी तथा लेटलतीफ आपराधिक न्यायिक प्रणाली के कारण कमजोर होता जा रहा है। कोई भी अपराध मात्र कठोर सजा का प्रावधान मात्र होने से नियंत्रित नहीं होता अपितु अपराध की सजा अवश्य मिलेगी, यह सुनिश्चित किये जाने से उसमें वास्तविक तौर पर कमी आती है तथा भारत के बाल-श्रम संबंधी कानून तथा सुस्त न्याय प्रक्रिया इसका अपवाद नहीं है।

स्पष्ट है कि भारत में बाल-श्रम के सफल उन्मूलन के लिए चहुंमुखी तथा समन्वित प्रयास करने होंगे, जिससे कि देश के इन नौनिहालों को भी वह सब कुछ मिल सके, जिसके वे वास्तविक तौर पर हकदार हैं। इस प्रकार के विविध प्रयासों के सफल क्रियान्वयन से बाल-श्रम का उन्मूलन काफी हद तक संभव हो सकता है। ❑

(लेखक एस.जे.बी. कॉलेज आफ लॉ, छाता, मथुरा में अर्थशास्त्र के प्रवक्ता हैं)

बीड़ी श्रमिकों के लिए समूह बीमा योजना

भारतीय जीवन बीमा निगम लिमिटेड के सहयोग से बीड़ी कामगारों के लिए एक समूह बीमा योजना चलाई जा रही है। इसके लाभों में स्वाभाविक रूप से मृत्यु के मामले में 10,000 रुपये और दुर्घटना से मृत्यु के मामले में 25,000 रुपये का बीमा कवर शामिल है।

बीड़ी कामगारों के लिए समूह बीमा योजना में भाग लेने के लिए प्रीमियम के रूप में बीड़ी कामगारों को कोई राशि भुगतान नहीं करनी होती है। इस समय, प्रति बीड़ी कामगार प्रतिवर्ष 60 रुपये की दर से प्रीमियम का भुगतान किया जाता है, जिसे श्रम कल्याण संगठन और वित्त मंत्रालय की सामाजिक सुरक्षा निधि से बराबर-बराबर वहन किया जाता है और एल.आई.सी. द्वारा रखरखाव किया जाता है।

सभी बीड़ी कामगार जिन्हें परिचय पत्र जारी कर दिए गए हैं और जो लगभग 40.56 लाख हैं, वे सभी समूह बीमा योजना के दायरे में आते हैं, लेकिन कर्मचारी भविष्य निधि संगठन (ई.पी.एफ.ओ.) के सदस्य जो अपनी स्कीम में कवर होते हैं वे इसमें नहीं आते हैं। राज्य-वार आंकड़ें नहीं रखे जाते हैं। **(साभार : सूचना प्रेस कार्यालय)**

बाल श्रम का उन्मूलन

भारत सरकार ने वर्ष 1986 में बाल श्रम (प्रतिषेध और विनियमन) अधिनियम को अधिनियमित किया। राज्य सरकारें इस नीति के साथ-साथ उच्चतम न्यायलय द्वारा दिए गए निर्णय को भी क्रियान्वित कर रही हैं माननीय न्यायालय के निर्देशों के क्रियान्वयन की स्थिति के बारे में समय-समय पर राज्य सरकारों से जानकारी ली जाती है और श्रम और रोजगार मंत्रालय द्वारा प्रस्तुत शपथ पत्रों के रूप में इसके अनुपालन की रिर्पोट समय-समय पर माननीय उच्चतम न्यायालय को दी जाती है।

दसवीं योजना में यह सुनिश्चित करने की रणनीति होगी कि नौ वर्ष से कम आयु के सभी कामकाजी बच्चों को मानव संसाधन विकास मंत्रालय की सर्वशिक्षा अभियान स्कीम के अंतर्गत सीधे स्कूलों में भर्ती किया जाए। 9-14 वर्ष की आयु वर्ग के बच्चों को ब्रिजिंग स्कूलों से शिक्षा प्राप्त करने के पश्चात औपचारिक स्कूलों की मुख्यधारा में लाया जाएगा। जोखिमकारी व्यवसायों और प्रक्रियाओं में कार्यरत बच्चों को कार्य से हटाने और उन्हें पुनर्वासित करने के उद्देश्य से यह योजना पहले 12 जिलों में शुरू की गई थी। नवीं योजना के अंत तक 13 राज्यों के 10 जिलों को शामिल करने के लिए इस स्कीम का विस्तार किया गया था। अब 10 वीं योजना में 20 राज्यों के 250 जिलों को कवर करने के लिए इसका विस्तार किया गया है। मध्याहन भोजन, वजीफा, व्यावसायिक प्रशिक्षण और स्वास्थ्य जांच इस स्कीम के आवश्यक घटक हैं।

बाल श्रमिक और न्याय व्यवस्था

डा. अनामिका प्रकाश

बाल–श्रमिकों के नाम पर परिभाषित पांच से चौदह वर्ष की उम्र के ये बच्चे अपने अरमानों का गला घोटकर, भविष्य दांव पर लगाकर पेट भरने के लिए मेहनत–मजदूरी को मजबूर हैं। दिलचस्प यह है कि जैसे–जैसे राष्ट्र तरक्की (विकासशील) की डगर पर बढ़ रहा है, उसी गति से बाल–श्रमिकों की संख्या भी बढ़ रही है। आज दुनिया में बाल श्रमिकों की अधिकतम दर अफ्रीका में है। इसके बाद लातिनी और अमेरिका की बारी है। मगर श्रम–शक्ति में बच्चों की अधिकतम संख्या भारत में है। स्थिति यह है कि यहां बाल–श्रमिकों की संख्या कई छोटे–छोटे देशों की जनसंख्या के बराबर है।

दरअसल, भारत में बच्चों की जितनी उपेक्षा हुई है, उतनी किसी और वर्ग की नहीं हुई। विकास की राष्ट्रीय नीति तैयार करते समय मानव संसाधनों, खासतौर पर बच्चों के विकास के नाम पर मात्र खानापूर्ति ही की जाती है। समाज के तकरीबन सभी बच्चे अमानवीय जीवन जीने को मजबूर हैं। जिस उम्र में उन्हें शारीरिक और मानसिक विकास के लिए आवश्यक सुविधाएं मिलनी चाहिए। उस उम्र में वे खानों, कल–कारखानों, खेत–खलिहानों, जहरीले रसायनों और धुआं उगलती चिमनियों के बीच कड़ी मेहनत करते रहते हैं।

श्रम मंत्रालय के एक सर्वेक्षण के अनुसार औसतन भारत के हर तीसरे परिवार में एक बाल–श्रमिक होता है दूसरे शब्दों में पांच से चौदह वर्ष की आयु का हर चौथा बच्चा बाल–मजदूर है। इसी तरह सेंटर फॉर कन्सर्न ऑफ चाइल्ड लेबर ने भारत में बाल–श्रमिकों की संख्या करीब दस करोड़ होने का अनुमान लगाया गया है। यूनीसेफ की रिर्पोट के मुताबिक विश्व में अशिक्षित और बाल–श्रमिकों का सबसे बड़ा देश भारत ही है। एक तथ्य यह भी काबिलेगौर है कि जहां पश्चिम बंगाल में बाल–श्रमिकों की संख्या पांच लाख है, वहीं उत्तर प्रदेश में यह आंकड़ा एक करोड़ दस लाख से अधिक का है। भारत कूल के 132 जिले ऐसे है, जिनमें खतरनाक उद्योगों में बाल–मजदूर कार्यरत है। बिहार, आंध्रप्रदेश, गुजरात, कर्नाटक, जम्मू–कश्मीर, मध्यप्रदेश, महाराष्ट्र, उड़ीसा, राजस्थान, तमिलनाडु, पश्चिम बंगाल, उत्तरप्रदेश व दिल्ली में नब्बे प्रतिशत बाल–श्रमिक कार्य करते हैं।

बाल–मजदूरों से संबंधित ये आंकड़े आधुनिकता, प्रगतिशीलता तथा विकास के बड़े –बड़े दावों पर प्रश्नचिन्ह लगा देते हैं, लेकिन बावजूद इसके इस कड़वी सच्चाई से हमारे नीति–नियंता लगातार आंखे चुराते रहे हैं। यहां पर इस समस्या के समाधान के लिए बड़ी–बड़ी योजनाएं तो बनाई जाती हैं, लेकिन अभी तक ठोस उपलब्धि हासिल नहीं हो पाई है।

ऐसा क्यों है कि सुबह–सुबह जब आधे बच्चे भविष्य की तलाश में स्कूल जा रहे होते हैं, उसी समय आधे बच्चे अपने और परिवार का पेट भरने के लिए विभिन्न स्थानों पर काम करने जा रहे होते हैं। चौंकाने वाले तथ्य तो यह कि बालश्रम की समस्याओं पर विकसित देशों ने एक सीमा तक काबू पा लिया है, लेकिन विकासशील राष्ट्र लगातार इससे जूझ रहे हैं। अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर लगातार यह भावना प्रबल हो रही है कि श्रम के लिए बच्चों का उपयोग करना सामाजिक और आर्थिक दृष्टि से उचित नहीं है। इसी के तहत अमेरिका और यूरोपीय राष्ट्रों में उन सभी वस्तुओं के बहिष्कार की लहर चल रही है, जिनके उत्पादन में बालश्रम का उपयोग किया गया होता है। अमेरिका में डेमोक्रेट सीनेटर टॉम हरकिन ने कुछ समय पहले सीनेट में एक बिल प्रस्तुत किया था, जिसमें उन सभी वस्तुओं के आयात पर प्रतिबंध लगाने की मांग की गई थी, जिनके उत्पादन में 15 वर्ष से कम आयु के लोगों का श्रम लगा हो। 'हरकिन बिल' में यह सुनिश्चित करने के लिए सलाह दी गई थी कि वे कैसे बालश्रम का उपयोग करने से बच सकते हैं।

अभी हाल ही में ओस्लो के अंतर्राष्ट्रीय बालश्रम सम्मेलन में इंटरनेशनल कन्फेडरेशन ऑफ ट्रेड यूनियन, यूनिवर्सल एलायंस ऑफ डायमंड वर्कर्स, इंटरनेशनल टेक्निकल इंप्लाइज तथा इंटरनेशनल कन्फेडरेशन ऑफ कार्सियल क्लरिकल ने बहुराष्ट्रीय कंपनियों से अपील की कि वे हीरा तथा जवाहरात उद्योग में जबरन बाल–मजदूरी कराने की प्रथा को खत्म कराने में सहयोग करें। सम्मेलन में बताया गया है कि भारत के जवाहरात में करीब डेढ़ लाख बाल–श्रमिकों के पुनर्वास का दायित्व भारत सरकार का है। सम्मेलन में जो सबसे महत्वपूर्ण बात कही गई थी कि शिक्षा के बजट में कम धन खर्च करने के कारण ही बालश्रम की समस्या बढ़ी है। गौरतलब है कि सरकार शिक्षा की तुलना में रक्षा बजट पर बीस गुना अधिक खर्च कर रही है।

लगातार सम्मेलनों और सेमिनारों में बाल–श्रमिकों का मुद्दा उठने के बावजूद सरकारें इस तरफ से क्यों आंखें मूंदे रहती हैं? बाल–श्रमिकों की तमाम समस्याओं और उनसे जुड़ी परिस्थितियों का जानते–बूझते हुए भी उन पर काबू क्यों नहीं पा सकीं, ये कई ऐसे महत्वपूर्ण सवाल हैं जो सरकारों की कार्य प्रणाली पर संदेह पैदा करते हैं। भारत में बाल–श्रमिकों पर अभी तक जो शोध किए गए हैं, उनसे यह निष्कर्ष निकला कि जिस प्रांत में साक्षरता दर जितनी अधिक थी, वहां पर बाल–श्रमिकों की संख्या उतनी ही कम थी। इसका उदाहरण केरल है, जहां साक्षरता की दर अधिक है, इसलिए काम–काजी बच्चों की संख्या सबसे कम 1.08 फीसदी है। वहीं मध्य प्रदेश तथा कर्नाटक जैसे राज्यों में बच्चों के विद्यालय व्यय की दर अधिक है, तो उनकी काम में भागीदारी का प्रतिशत 7.90 तथा 7.64 है।

लेकिन, यहां तो तस्वीर ही उलटी है भारत में मां–बाप के शिक्षित न होने, उनके आर्थिक संसाधनों से कमजोर होने तथा संकुचित और लापरवाह होने के कारण यह समस्या बढ़ी है। इन कारणों के चलते वे बच्चों की शिक्षा को अधिक महत्व नहीं देते। फलस्वरूप बच्चे स्कूल नहीं जा पाते और बीच में ही पढ़ाई छोड़ देते हैं। माता–पिता भी परिस्थितियों के हाथों मजबूर हो शिक्षा के बदले उन्हें काम पर लगा देते है। वे समझते हैं कि घर बैठाने या पुनः स्कूल भेजने से बेहतर है आय का स्रोत बढ़ा दें। फिर यहीं से शुरू होता है बच्चों का दमन, शोषण और उत्पीड़न। बाल मजदूरी के कारण बच्चों के नैसर्गिक–शारीरिक व मानसिक विकास नहीं हो पाता। इससे उनकी मौजूदा क्षमता तो कम होती ही जाती है, उनकी भावी संतानों पर भी विपरीत असर पड़ता है। इसे इस तरह समझ सकते हैं– उद्योगों में काम करने वाले बाल–श्रमिक इतने थक जाते हैं कि वे कमाई के साथ पढ़ाई नहीं कर सकते। परिणामस्वरूप शिक्षा और प्रशिक्षण के अभाव में उनके मानसिक विकास की गति धीमी हो जाती है। बौद्धिक कमी के बने रहने के कारण आगे चलकर उनकी आय की क्षमता कम हो जाती है। अशिक्षित रहने के कारण ये जिंदगी भर केवल मजदूरी करते रहते हैं। इसके चलते इनका जीवन स्तर लगातार गिरता जाता है इसके अलावा कुपोषण, अधिक जनसंख्या जैसी समस्याएं जो केवल शिक्षा के द्वारा दूर हो सकती है, उन पर ये काबू नहीं कर पाते। खतरनाक उद्योगों में काम करने वाले बच्चों के स्वास्थ्य पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ता है। बाल–श्रमिकों को रखने से नियोक्ताओं का भी फायदा रहता है। वे मनमानी अवधि तक भय और प्रताड़ना के सहारे काम लेते हैं। उन्हें बाल–श्रमिकों से कोई भय नहीं होता।

बाल–श्रमिकों को शोषण रोकने के लिए सरकारी स्तर पर कानून तो बनाए गए, किंतु उनके क्रियान्वयन में शिथिलता के चलते उद्देश्य पूरे नहीं हुए। बाल मजदूरी के संबंध में सबसे पहले 1938 में ब्रिटिश सरकार ने बाल मजदूरी अधिनियम बनाया। 1946 में अभ्रक खान कानून, 1951 में चाय, कॉफी, रबड़ के बगानों में कार्यरत श्रमिकों के संरक्षण से जुड़ा अधिनियम, 1952 मे खान कानून, 1959 में श्रम नियोजन अधिनियम, 1960 में बाल अधिनियम, 1976 में बंधुआ मुक्ति अधिनियम बनाए गए। इसके बाद भी कई कानून बनाए गए हैं, लेकिन इनके बारे में पूर्व मुख्य न्यायाधीश का यह कथन विचारणी है–'बाल–श्रमिकों' से संबद्ध अधिकतर कानून कागजों तक सिमित है और उनका क्रियान्वयन लगभग शून्य है इन उद्योगों में बाल–श्रमिकों की मौजूदगी ही इन कानूनों की हंसी उड़ाती है।'

ये कानून तब तक निरर्थक साबित होते रहेंगे, जब तक सभी नागरिक बच्चों के प्रति मानवीय दृष्टिकोण नही अपनाएंगे। मुनाफाखोर और दिखावे के कानून बचपन नहीं लौटा सकते। इसके लिए अभिभावकों में चेतना जागृत करने की जरूरत तो है ही, साथ ही नियोजकों से भी सामान्य मानवीय कर्तव्यों की आशा की जानी चाहिए। बालकों को स्नेह, प्रेम, मनोरंजन, पोषण के अधिकार के साथ आगे बढ़ने का अवसर दिये जाने की जरूरत है। अगर इस तरफ ध्यान नहीं दिया गया, तो राष्ट्र का एक महत्वपूर्ण समाज पहले ही बेकार हो चुका होगा, फिर विकास, प्रगति मानवाधिकार, लोकतंत्र की बात बेमानी ही रहेगी। ❑

(लेखिका स्वतंत्र पत्रकार हैं)

श्रम

- असंगठित श्रमिकों के लिए सामाजिक सुरक्षा योजना परीक्षण के तौर पर 50 जिलों में शुरू की गई।
- बच्चों से मेहनत–मजदूरी कराने पर रोक लगाने के लिए राष्ट्रीय बाल श्रम परियोजना का विस्तार 150 जिलों से बढ़ाकर 250 जिलों में किया जाएगा।
- 800 करोड़ रुपये की अनुमानित लागत से वर्तमान 500 औद्योगिक प्रशिक्षण संस्थानों (आईटीआई) का दर्जा बढ़ाया जाएगा। यह राशि श्रमिकों को अंतर्राष्ट्रीय स्तर की दक्षता प्रदान करने पर खर्च की जाएगी।
- श्रमिकों से जुड़े मुद्दों को निपटाने के लिए त्रिपक्षीय सलाहकार प्रक्रिया को और सुदृढ़ किया जा रहा है।
- असंगठित क्षेत्र में श्रमिकों के कल्याण को बढ़ावा देने के लिए असंगठित क्षेत्र श्रमिक विधेयक 2004 का प्रारूप नये सिरे से तैयार किया जा रहा है। श्रमिकों को देय 7 अरब 27 करोड़ रुपये केन्द्रीय सार्वजनिक क्षेत्र उपक्रमों से वसूल कर लिए गए हैं।
- बीड़ी मजदूरों को दी जाने वाली आवासीय सहायता को दुगना करके प्रत्येक इकाई के लिए 40,000 रुपये किया गया है। पात्रता सीमा भी बढ़ा दी गई है।
- श्रम मंत्रालय, बीड़ी मजदूरों के वास्ते अस्पतालों के निर्माण के लिए राज्य सरकारों, कर्मचारी राज्य बीमा निगमों और गैर सरकारी संगठनों को एक मुश्त दो करोड़ रुपये का अनुदान देगा।
- श्रम और रोजगार मंत्रालय से संबंध राष्ट्रीय न्यूनतम साझा कार्यक्रम के प्रावधानों के कार्यान्वयन पर नजर रखने के लिए श्रम सचिव के अधीन कोर ग्रुप गठित। ❑

विधि और न्याय

उच्च न्यायालय के न्यायाधीशों के 75 खाली पद भरे गये। अदालतों में लम्बित मामलों को निपटाने और शीघ्र न्याय सुनिश्चित करने के लिए बाकी 147 पदों को शीघ्र भरने के प्रयास जारी।

लगभग सभी अदालतों में इंटरनेट प्रणाली से युक्त कंप्यूटर उपलब्ध कराए जा रहे हैं ताकि रिकार्ड को अद्यतन बनाया जा सके और मामलों का निपटारा आसानी से हो।

लगभग सभी राज्यों में काम कर रहे विधि सेवा प्राधिकरणों के कामकाज के सुचारू रूप से संचालन के लिए कार्रवाई शुरू की गयी। इसके अंतर्गत समाज के कमजोर वर्गों को मुक्त कानूनी सहायता उपलब्ध करायी जा रही है।

लोक प्रशासन प्रणाली में आमूल परिवर्तन का विस्तृत प्रारूप तैयार करने के लिए प्रशासनिक सुधार आयोग गठित किया जाएगा।

तहलका प्रकरण की जांच कर रहा फूकन आयोग भंग किया गया।

आधारभूत ढांचा सुविधाओं में सुधार और देश की सभी अदालतों में अतिरिक्त स्टाफ की नियुक्ति के लिए कदम उठाये गये। ❑

क्यों बिकता है बचपन

राजेन्द्र सिंह बिष्ट

जिस देश में बच्चे मजदूरी करें और बड़े बेरोजगारी के आंकड़े को सुरसा के मुंह की भांति बड़ा बनाते चले जाएं वहां यह निष्कर्ष सहज ही सामने आ खड़ा होता है कि राज, समाज और शिक्षा के साथ कोई बड़ी गड़बड़ी मौजूद है। 5 से 14 वर्ष की अवस्था के बच्चों को यदि अर्थव्यवस्था के चक्के में स्नेहक की भूमिका निभानी पड़े तो इस पर गहराई और संजीदगी से विचार करना हमारा दायित्व है। बाल मजदूरी व्यवस्थागत विसंगतियों, पक्षपातपूर्ण नीतियों, जनविरोधी विकास, राजनीतिक इच्छाशक्ति के अभाव, अपर्याप्त कल्याणकारी कानूनों, लोक सरोकारों की कमी, उत्पादन पद्धतियों से सस्ते श्रम की छूट, बचपन की मान्यता पर आधारित पारिवारिक व सामाजिक सोच के अभाव तथा उपयोगी, रोचक व गुणात्मक शिक्षा की नामौजूदगी के कारण पैदा हुआ और पनप रहा एक सामाजिक कलंक है।

इस कालंक का रंग दिन–प्रतिदिन गहरा ही होता जा रहा है। बाल मजदूरी एक तरफ समाज के सर्वांगीण विकास एवं स्वस्थ स्पर्धा को बाधित करके, गरीबी, वयस्क बेरोजगारी, अशिक्षा, जनसंख्या वृद्धि, बीमारियों व सामाजिक–आर्थिक विषमता को बढ़ावा देती है तो दूसरी तरफ साथ ही मानवाधिकारों, बाल अधिकारों तथा मानवीय गरिमा का भी हनन करती है। इसके कई स्वरूप समाज में व्याप्त हैं। इन रूपों पर गौर करना हर सभ्य समाज के लिए अनिवार्य है। यह अनिवार्यता हमारे देश में उदारवाद के आगमन के साथ ही और महत्वपूर्ण हो गई है।

वैसे तो बाल मजदूर अर्थव्यवस्था के हर क्षेत्र में मौजूद हैं लेकिन सब से अधिक कृषि क्षेत्र में हैं। 80 प्रतिशत से भी अधिक बाल मजदूर इसी क्षेत्र से जुड़े हैं। इसके बाद वे क्षेत्र हैं जो किसी न किसी रूप में कृषि से जुड़े हैं जैसे पशुधन, वानिकी, चाय बागान और मत्स्य पालन। इसमें तकरीबन 6 प्रतिशत भागीदारी इन बाल श्रमिकों की है। कुटीर और घरेलू उद्योग धंधे में भी लगभग 4 प्रतिशत बाल मजदूर हैं जिसमें जम्मू–कश्मीर का दस्तकारी उद्योग, अलीगढ़ का ताला उद्योग, गुजरात का रत्न उद्योग, मिर्जापुर का कालीन उद्योग, फिरोजाबाद का चूड़ी उद्योग और अन्य तमाम उद्योग शामिल हैं जहां बच्चों का श्रम किसी न किसी रूप में लाभदायक है।

यूनिसेफ द्वारा कराये गए सर्वेक्षण में सिर्फ भारत के शहरों में 1 करोड़ 80 लाख बच्चे सड़कों पर रह कर काम कर रहे हैं। इनमें से अधिकांश ने कभी स्कूल की शक्ल तक देखी नहीं है। कोलकाता के स्लम के अध्ययन में पाया गया कि स्कूल जाने वाली आयु के 84 प्रतिशत बच्चे स्कूलों से बाहर हैं, जिनमें से 49 प्रतिशत बच्चे बाल श्रमिक हैं। पूरी संख्या पर नजर डालें तो खतरनाक और गैर खतरनाक उद्यमों में 6 करोड़ से अधिक बाल मजदूर होने का अनुमान है। दूसरी तरफ घरों की बंद चारदीवारी में भी लाखों लड़के और लड़कियां घरेलू मजदूर की तरह काम कर रहे हैं। सामाजिक सरोकारों की कमी के चलते इनकी संख्या में निरंतर बढ़ोतरी होती जा रही है। बाल मजदूरों की दयनीय उपस्थिति में कई कारण सहायक हैं। उद्योग जगत एक तो इनके मामले में कानूनी बचाव के हर तरीके जानता है और वह यह भी समझता है कि बच्चे का शरीर इतना लचीला होता है कि किसी भी स्थिति में काम कराना आसान है। फिर अनुशासन को लेकर इतनी झंझट नहीं होती। और इनके संगठित होने का खतरा भी मौजूद नहीं होता। कम मजदूरी और अधिक काम के लिए बच्चों से उपयुक्त और भला कौन हो सकता है। दूसरी तरफ पारिवारिक कारणों को खंगालें तो माता–पिता आर्थिक तंगी के कारण अपने बच्चों को स्कूल भेजने की जगह उन्हें काम पर भेजने के लिए मजबूर हैं।

देखा जाए तो बाल मजदूरी एक तरफ आर्थिक क्रियाकलाप या गतिविधि है तो दूसरी तरफ एक सामाजिक बुराई भी। इस सामाजिक बुराई को दूर करने में वैसे तो उतनी अड़चनें नहीं हैं जितनी बताई जा रही हैं लेकिन कहीं न कहीं एक इच्छाशक्ति का अभाव दिखता है। गरीबी की आड़ में बाल मजदूरी के बने रहने का तर्क भी कोई खास मजबूती नहीं रखता। कोरिया, रवांडा, श्रीलंका जैसे कई देश हैं, जहां गरीबी है प्रतिव्यक्ति आय कम है, लेकिन बाल मजदूरी न के बराबर है। यह गरीबी का ही असर है कि मां–बाप अपने और बच्चों की भविष्य के बजाय वर्तमान आय को अधिक महत्व देते हैं। नतीजतन बच्चों की पढ़ाई उसकी बलि चढ़ जाती है।

संवैधानिक प्रावधानों व अनेक कानूनों के जरिये बाल मजदूरी और बंधुआ मजदूरी पर रोक लगाने की बातें मौजूद हैं, परंतु यह दुर्भाग्यपूर्ण है कि आज भी इस देश में 6 करोड़ से अधिक मासूमों का बचपन मजदूरी और गुलामी की चक्की में पिस रहा है। पूरे विश्व में आज भी 25 करोड़ बच्चे अपने सपने, अपना बचपन, अपना भविष्य बेचने को मजबूर हैं। बच्चों का विकास तो अवरुद्ध हो ही रहा है, साथ ही इसके चलते देश में गरीबी, वयस्क बेरोजगारी, अशिक्षा और जनसंख्या वृद्धि जैसी सामाजिक बुराइयां बड़ी तेजी से बढ़ रही हैं।

बेरोजगारी, गरीबी, बढ़ती हुई आबादी और अशिक्षा को रोक पाना तो अपने आप में बहुत कठिन है लेकिन जो वर्तमान कानून हैं तथा जो देश का संविधान है, उसके परिप्रेक्ष्य में बाल मजदूरी को रोक पाना न तो असंभव है और न कठिन। आज जो भी बाल मजदूरी के

लिए आधे–अधूरे नियम देश में हैं या संविधान जो निर्देश देता है, उनका कड़ाई से पालन करने से बाल मजदूरी रुक सकती है। आज देश के 6 करोड़ से अधिक बाल मजदूरों से यदि होटल, ढाबों, खेतों और दूसरे उद्यमों में काम लेना बंद कर दिया जाए तो स्वाभाविक है कि ये उद्यम बंद नहीं होंगे और उनकी रिक्त जगहें वयस्क लोगों को उपलब्ध हो जायेंगी। लेकिन इस ओर कोई ध्यान नहीं देता तथा लोग बेरोजगारी का रोना रोते रहते हैं।

प्रमुख अर्थशास्त्री वेनर का मानना है कि बाल मजदूरी का प्रमुख कारण निरक्षर यानी पढ़ा–लिखा न होना है। वे बाल मजदूरी की माजूदगी के लिए दिए जाने वाले गरीबी, उच्च जन्मदर, परिवार का आकार और निम्न आर्थिक विकास जैसे कारणों को नकारते हैं। उनका मानना है कि बाल मजदूरी राजनीतिज्ञों, उद्योगपतियों, ऊंची जातियों और गरीब अभिभावकों के निहित स्वार्थों की वजह से बनी हुई है क्योंकि इन्हें ही इस बुराई से अधिकाधिक लाभ मिलता है।

जहां तक शिक्षा की बात है तो अधिकांश बाल मजदूर वे हैं जो स्कूल छोड़ देते हैं। अब इस प्रक्रिया को रोकना बाल मजदूरी के निदान में सहायक बन सकती है लेकिन यह कैसे होगा ? इसके लिए शिक्षा की गुणवता में सुधार लाया जाए तो बात बन सकती है। छात्र और शिक्षक का आपसी संबंध बेहतर हो तो छात्र विद्यालय छोड़ने में हिचक महसूस करेंगे। सबसे बड़ी बात तो यह है कि बच्चे स्कूल जाएं या नहीं जाएं यह बच्चों का अपना निर्णय नहीं होता। स्पष्टतः माता–पिता इस संबंध में निर्णय लेते हैं और उन पर कई तरह के दबाव होते हैं जो बच्चे को विद्यालय के प्रांगण में प्रवेश से रोकते हैं। राज्य सरकारों को भी इस संबंध में महत्वपूर्ण भूमिका निभानी होगी, जो कानून के माध्यम से बच्चों के सामाजिक और वैधानिक अधिकारों को पूरा कराने में मददगार होगी। जाहिर है सरकार मूक रहकर देश के भविष्य के साथ खिलवाड़ नहीं कर सकती।

अंततः इतना समझ लेना बहुत जरूरी है कि यदि बच्चों को मजदूरी के भार से मुक्त नहीं किया जाता है तो बच्चे न तो इस देश का भविष्य हो सकते हैं और न ही भविष्य हमारा हो सकता है। लिहाजा हर स्तर पर संकल्प और इच्छा शक्ति के सूत्र से बच्चों को उनका बचपन उनके पास ही रहने दिया जाए तो बेहतर है। ❑

(लेखक स्वतंत्र पत्रकार है)

भारत–एक ज्ञान आधारित अर्थव्यवस्था

भारत की "ज्ञान आधारित अर्थव्यवस्था" की कथनी और करनी का लोहा विश्व मान चुका है। जन–जन तक उत्कृष्ट शिक्षा पहुंचाने के प्रयास किए जा रहे हैं। इससे हमारी ज्ञान अर्थव्यवस्था की नींव और सुदृढ़ हो जाएगी। राष्ट्रीय शैक्षिक उपग्रह "एडुसेट" के अलावा अर्थव्यवस्था, प्रसार भारती द्वारा डायरेक्ट– टू–होम टेलीविजन की शुरुआत की गई है। इससे जहां लोक प्रसारण को बढ़ावा मिलेगा, वहीं बढ़ती ज्ञान आधारित अर्थव्यवस्था की नींव भी मजबूत बनेगी।

सरकार ने ब्राडबैंड नीति 2004 भी बनाई है जिसका उद्देश्य देश में ब्राडबैंड और इंटरनेट की पहुंच को बढ़ावा देना है। राज्य विस्तृत क्षेत्र नेटवर्क नीति की घोषणा की गई है जिसका उद्देश्य ब्लाक स्तर तक सरकारी कार्यालयों के बीच संपर्क स्थापित करने के लिए विश्वसनीय संपर्क कायम करना है। सूचना प्रौद्योगिकी विभाग ने भारतीय इंटरनेट सेवा प्रदायक संघ के साथ मिलकर भारतीय राष्ट्रीय इंटरनेट एक्सचेंज को बढ़ावा दिया है। यह एक गैर लाभाद्देशीय कंपनी है। इसका उद्देश्य देश उन्नत इंटरनेट सेवा सुलभ कराना है। भारतीय राष्ट्रीय इंटरनेट एक्सचेंज (निक्सी) शुल्क में सुधार लायेगा, लागत कम करेगा और बेहतर सुरक्षा सुनिश्चित करेगा।

ये आपूर्ति संबंधी प्रयास हैं। जहां तक मांग का सवाल है। सरकार ई–गवर्नेंस और ई–इनेब्लिंग ट्रांजेक्शंस में निवेश कर रही है। जन सेवाओं को इलेक्ट्रोनिक माध्यमों से जोड़ने के कार्य में तेजी लाने के लिए एक राष्ट्रीय ई–गवर्नेंस कार्य–योजना (एन.ई.जी.ए.पी.) तैयार की गई है। सरकार एक राष्ट्रीय जैव प्रौद्योगिकी नीति का प्रारूप तैयार कर रही है तथा जैव प्रौद्यौगिकी संबंधी अनुसंधान और विकास कार्यों में वृहत्तर निजी–सरकारी भागीदारी को बढ़ावा दे रही है।

सभी स्तरों पर शैक्षिक प्रणाली के आधुनिकीरण की जरूरत को समझते हुए और उत्कृष्टता करने वाले प्रशिक्षण संस्थानों के साथ–साथ तकनीकी शिक्षा को सुदृढ़ बनाने तथा उच्च शिक्षा के स्तर को उन्नत बनाने तथा सूचना प्राप्त करने की आवश्यकता को ध्यान में रखते हुए प्रधानमंत्री एक **राष्ट्रीय ज्ञान आयोग** का गठन करेंगे जो ज्ञान–आधारित अर्थव्यवस्था संबंधी नीतियों पर विद्वत राय प्रदान करेगा। ❑

सांख्यिकी और कार्यक्रम क्रियान्वयन

- देश में आर्थिक गणना के लिए बड़े पैमाने पर अभियान शुरू।
- राज्यों के सहयोग से मानव विकास इंडैक्स बनाने की तैयारी।
- सांसदों की स्थानीय क्षेत्र विकास योजना के लिए दिशा–निर्देशों में संशोधन किया जा रहा है।
- केन्द्रीय परियोजनाओं की निगरानी के लिए सख्त कदम।
- सामाजिक सांख्यिकी तैयार करने की प्रक्रिया में तेजी लायी जाएगी।
- ग्रामीण और शहरी स्थानीय निकायों के प्रयोग के लिए स्थानीय स्तर की डेटा बेस हैंडबुक तैयार।
- ब्लॉक स्तर पर महत्वपूर्ण संकेतकों पर आधारित डाटाबेस प्रणाली तैयार की जा रही है।

सफरनामा मई दिवस का

कैलाश जैन

आज से लगभग सवा शताब्दी पहले मजदूर आंदोलन के इतिहास का सर्वाधिक महत्वपूर्ण निर्णय हुआ था। प्रथम मई 1889 के दिन मजदूरों ने लंबे और निर्णायक संघर्ष के पश्चात आखिर आठ घंटे का 'कार्य–दिवस' की अपनी मांग पर जीत हासिल की थी। दुनियाभर के मेहनतकश मजदूर उसी समय से पहली मई के दिन को अपनी जीत के जश्न के रूप मनाते चले आ रहे हैं।

संगठन–शक्ति के बिना हर वर्ग का, चाहे वह कितना ही बड़ा और विशाल हो, निहित स्वार्थों द्वारा सदैव से शोषण किया जाता रहा है। यही स्थिति पुराने युग के मजदूरों की भी थी। उस समय श्रमिक–संघ जैसी किसी चीज का कोई अस्तित्व तक नहीं था। कई मालिक अपने नौकरों और मजदूरों से बीस–बीस घंटे तक काम लेते थे। उन्नीसवीं शताब्दी के पहले दशक में पहली बार फिलाडेल्फिया के चर्मकारों ने संगठित होकर इस शोषण के खिलाफ आवाज उठाई। मालिकों द्वारा इस के लिए उनपर मुकदमा चलाया गया। मुकदमे की सुनवाई के दौरान इस घोर अमानवीय शोषण की बात प्रकाश में आई। इस शुरुआती आंदोलन से मजदूरों को संगठित और एकजुट होने की प्रेरणा मिली, समाज के प्रबुद्ध व संवेदनशील वर्ग का ध्यान भी इस यंत्रणादायक कुचक्र की ओर आकृष्ट हुआ। मानवतावादी विचारकों ने भी किसी व्यक्ति से 18–20 घंटे काम लेने को प्रकृति के नियमों के विरुद्ध तथा नितांत अमानवीय बताते हुए मजदूर–आंदोलन के प्रति अपनी हमदर्दी जाहिर की। धीरे–धीरे काम के घंटे निश्चित किये जाने के पक्ष में पूरी दुनिया में प्रबल जनमत तैयार होने लगा।

आगे चलकर विभिन्न–संगठनों ने 'आठ घंटे काम, आठ घंटे आराम और आठ घंटे मनोरंजन' का एक नया फार्मूला सामने रखा। मशहूर साम्यवादी, दार्शनिक तथा लेखक कार्ल मार्क्स ने सन् 1857 में अपनी विख्यात पुस्तक 'दास कैपिटल' में इस फामूर्ले की विशद व्याख्या की। 1866 के सितंबर मास में अंतर्राष्ट्रीय मजदूर संघ की जिनेवा में हुई कांफ्रेंस में 'आठ घंटे' के कार्य दिवस को कानूनी मान्यता दिलवाए जाने संबंधी प्रस्ताव को पारित किया गया। यह आंदोलन जब गति पकड़ने लगा तो सरकारें मजदूरों से आठ घंटे काम के लिए सहमत हो गई। सन् 1868 में अमेरिकी संसद ने भी इस विषय में एक महत्वपूर्ण प्रस्ताव पारित किया। सन् 1873 में तकरीबन पूरा विश्व भयंकर आर्थिक मंदी की चपेट में था, जिसके कारण अमेरिकी उद्योगों का समूचा ढांचा चरमरा गया था। गरीबी, बेरोजगारी, भुखमरी, आदि समस्याएं जन–मानस को उद्वेलित कर रही थीं। इन समस्याओं के साथ मिलकर 'आठ घंटे का कार्य दिवस' एक राष्ट्रव्यापी आंदोलन बन गया। 1877 में रेल मजदूरों, अस्पताल–मजदूरों आदि की व्यापक हड़तालें हुई। 1881 से 1884 तक यह संघर्ष जारी रहा और क्रमशः शिकागो, पीटर्सबर्ग, सिन्सिनाटी, सेंट लुईस, वाशिंगटन और न्यूयार्क तक फैल गया। 1885 में करीब ढाई लाख मजदूरों ने हड़तालों और प्रदर्शनों के द्वारा इस आंदोलन में भाग लिया। पहली मई, 1886 को अमेरिका के शिकागो तथा विभिन्न शहरों में मजदूरों ने अपनी इस जायज मांग को लेकर हड़ताल व प्रदर्शन किए। इस हड़ताल में करीब पैंतीस लाख मजदूरों ने पूरे उत्साह के साथ हिस्सा लिया। यह प्रदर्शन अद्वितीय रहा और इससे शोषक–मालिक दहल उठे। मालिकों और पुलिस की साजिश से तीन मई के दिन मैक कार्मिक हार्वेस्टर नामक कारखाने के हड़ताली मजदूरों पर पुलिस ने हमला कर 6 मजदूरों की हत्या कर दी। इस मामले के विरोध में अगले दिन चार मई को मजदूरों ने शिकागो में विशाल प्रदर्शन किया, जिससे पुलिस और मजदूरों के बीच हिंसक संघर्ष हुआ तथा सात पुलिसकर्मी और चार मजदूर मारे गये। बाद में पुलिस ने मालिकों के साथ मिलकर प्रतिशोधात्मक कार्यवाही कर कई मजदूर नेताओं को गिरफ्तार कर लिया। उन पर फर्जी मुकदमे चलाए गए तथा कई मजदूरों को फांसी और कई को उम्र कैद की सजा सुनाई गई।

इन दमनकारी कार्यवाही से भी मजदूरों के हौसले पस्त नहीं हुए बल्कि वह और अधिक उत्साह के साथ अपनी जायज मांग के लिए संघर्ष में जुट गए। चार मई की घटना के लिए अभियुक्त बनाए गए मजदूर नेता पर्सन्न, स्पाहल फिशर और एन्जेल को 11 नवम्बर, 1887 को फांसी पर लटका दिया गया। इससे मजदूर आंदोलन और अधिक उग्र हो उठा। 14 जुलाई 1889 को पेरिस में दूसरे इंटरनेशनल कांग्रेस की स्थापना हुई। यह सन 1789 में हुई फ्रांसीसी क्रांति के शताब्दी समारोह के दौरान हुई। इस कांग्रेस में जो महत्वपूर्ण निर्णय लिया गया, वह यह था कि पहली मई को 'मजदूर दिवस' के रूप में विश्व स्तर पर मनाया जाए।

अंततः कई बलिदानों और संघर्षों के बाद एक मई, 1889 को मजदूरों ने आठ घंटे काम करने की अपनी निहायत मानवीय व जायज मांग कानूनी तौर पर मनवा कर एक बहुत बड़ी जंग जीत ली। एक लंबे और कठिन संघर्ष के बाद ही मजदूरों को यह जीत हासिल हो पाई। इस संघर्ष में कई मजदूरों को अपने प्राणों की आहुति देनी पड़ी। दरअसल, आंदोलन के उन्ही शहीदों की याद में 'मई–दिवस' के अवसर पर श्रद्धांजलि अर्पित की जाती है। आज पूरी दुनिया के मजदूर बड़े पैमाने पर मई दिवस मनाते हैं। तथा इस बात की समीक्षा करते हैं कि उन्होंने कितनी प्रगति की। संसार के सभी देशों में मई दिवस का यह उत्सव मजदूर–वर्ग में बड़े जोश–खरोश के साथ मनाया जाता है। ❑

(लेखक राजस्थान में एडवोकेट हैं)

गई टिप्पणी में रोजगार गारंटी की लागत को वर्ष 2005–06 में सकल घरेलू उत्पाद (सघउ) के 0.5 प्रतिशत से वर्ष 2008–09 में बढ़कर एक प्रतिशत हो जाने की संभावना व्यक्त की गई है। यह इस मान्यता पर आधारित है कि धीरे–धीरे इस कार्यक्रम को चार वर्ष की अवधि में 150 जिलों से आरंभ कर पूरे देश में लागू कर दिया जाएगा।

सघउ के एक प्रतिशत की अनुमानित लागत वित्तीय लागत है। वास्तविक लागत इससे काफी कम होगी। उदाहरणार्थ, किसी श्रमिक को सार्वजनिक कार्य में रोजगार देने की वित्तीय लागत उसकी संवैधानिक न्यूनतम मजदूरी होगी, लेकिन श्रमिक के अन्यथा बेरोजगार होने की स्थिति में इसकी वास्तविक लागत (जाने वाले वास्तविक संसाधन) उतनी अधिक नहीं होगी। यदि रोजगार गारंटी की वास्तविक लागत सघउ का एक प्रतिशत हो भी, तो भी चिंता की कोई बात नहीं है।

रोजगार गारंटी की वित्त व्यवस्था से जुड़ी चुनौती को इस तथ्य के आलोक में देखे जाने की जरूरत है कि भारत का कर–सघउ अनुपात अंतरराष्ट्रीय परिप्रेक्ष्य में काफी कम है। केंद्र और राज्य दोनों को मिलाकर यह लगभग 15 प्रतिशत है जबकि ओईसीडी देशों में यह 37 प्रतिशत है। हाल के वर्षों में भारत का कर–सघउ अनुपात कम हुआ है। उदाहरण के लिए, सघउ से केंद्रीय करों का अनुपात 2003–04 में केवल 9.3 प्रतिशत था जबकि 1987–88 में यह 10.6 प्रतिशत था। दूसरी बातों के अलावा ये कुछ ऐसे संकेतक हैं जो बताते हैं कि रोजगार गारंटी और उससे जुड़े सामाजिक कार्यक्रमों के लिए वित्त जुटाने के लिए भारत के सघउ–कर अनुपात को बढ़ाए जाने की अभी काफी गुंजाइश है।

कर राजस्व बढ़ाने की दिशा में वित्त मंत्रालय में हाल ही में जमा की गई केलकर–2 रिपोर्ट में उपयोगी संकेत हैं। हालांकि समान कर निर्धारित करने तथा कर की दरें कम कर राजस्व बढ़ाने में इसकी दिल छू लेने वाली आस्था जैसे कुछ पक्षों पर प्रश्न किए जा सकते हैं।

बावजूद इसके, इस रिपोर्ट में मूल्यवर्धित कर लागू करने, अधिकांश सेवाओं पर कराधान करने, कर–आधार बढ़ाने के लिए सूचना प्रौद्योगिकी का उपयोग करने, छूटों को समाप्त करने तथा कर चोरी रोकने जैसे अनेक संवेदनशील उपायों के द्वारा कर–सघउ अनुपात बढ़ाने का सुझाव भी दिया गया है। इन अवसरों का यदि सदुपयोग किया गया तो योजनागत व्यय को भारत के सघउ के एक प्रतिशत से काफी अधिक बढ़ाया जा सकता है।

लेकिन 'केलकर–2' पर ही ठिठक जाना कतई आवश्यक नहीं है। अन्य अनेक वित्तीय विकल्पों पर विचार किया जा सकता है। उदाहरणार्थ, हाल की विश्व बैंक की एक रिपोर्ट में अनुमान लगाया गया है कि व्यावसायिक कर से विश्रृंखल नियंत्रण हटा देने भर से राज्य सरकारें सघउ के 0.9 प्रतिशत के बराबर अतिरिक्त कर राजस्व संग्रहीत करने लगेंगी।

इसी तरह, पर्यावरण को क्षति पहुंचाने वाले उपभोग अथवा असामाजिक गतिविधियों पर 'हरित कर' लगाकर काफी राजस्व अर्जित किया जा सकता है। अनावश्यक सरकारी व्यय को कम किए जाने की भी काफी संभावना है। इसकी शुरुआत सैन्य व्यय तथा अमीरों को मिलने वाली सब्सिडियां कम करके की जा सकती हैं। संक्षेप में, रोजगार गारंटी को धारण करने की भारतीय अर्थव्यवस्था की क्षमता में कोई संदेह नहीं है। अपेक्षा इस संभावना को देख पाने और उसका दोहन करने के प्रति प्रतिबद्धता की है।

इनमें से कुछ प्रस्तावों का वे लोग विरोध कर सकते हैं जो यथास्थिति बने रहने से लाभान्वित हो रहे हैं। यह मूल्यवर्धित कर तथा पूंजी विनिमय कर के मामले में हम हाल ही में देख चुके हैं। एक तरह से यह कर सुधारों को रोजगार गारंटी अधिनियम जैसे सकारात्मक पहलों के साथ अधिक प्रखरता से जोड़ना है। टुकड़ों में सुधार लागू करने से प्रायः निहित स्वार्थ उन्हें पटरी से उतार देते हैं। अतः आज एक व्यापक नई प्रविधि की आवश्यकता है जिसमें कर–सघउ अनुपात तो हो ही, साथ ही कर राजस्व का बेहतर उपयोग भी शामिल हो। इस तरह के किसी पैकेज की सफलता की गुंजाइश टुकड़ों में किए जाने वाले सुधारों की तुलना में कहीं अधिक है।

'अमीर पर कर' लगाने का सिद्धांत इस पैकेज का निर्देशक सिद्धांत हो सकता है। विगत लगभग 20 वर्षों के दौरान तथाकथित मध्यवर्ग (आय का शीर्ष पांच प्रतिशत) इतना अमीर हो चुका है कि सपने में भी उसकी कल्पना संभव न थी। वास्तव में, इसने बगैर वीज़ा का आवेदन किए अपने को पहली दुनिया में स्थापित कर लिया है। काफी समय से इसमें उसकी हिस्सेदारी बकाया है। इसके बावजूद भारत में गरीबी अपने भयानक लक्षणों के साथ लगातार बनी हुई है। यह केवल उनके लिए ही दुखद नहीं है, वरन राष्ट्र के चेहरे पर भी एक गहरा धब्बा है। राष्ट्र के आत्म–सम्मान से लेकर प्रजातंत्र की गुणवत्ता तक यह सारी चीजों को प्रभावित कर रही है।

थोड़ा अलग रूप में कहें, तो प्रस्तावित रोजगार गारंटी अधिनियम के बारे में विचार करने के दो तरीके हैं। एक तरीका यह है कि इसे मेहनतकश वर्ग तथा सुविधाप्राप्त वर्ग के बीच संघर्ष के रूप में देखा जाए। दूसरा यह कि इसे राष्ट्रीय उद्यम माना जाए– एक ऐसा उद्यम जिससे किसी न किसी रूप में प्रत्येक नागरिक जुड़ा है। दोनों ही दृष्टिकोणों में कुछ यथार्थ है, लेकिन अब तक सार्वजनिक बहसों में केवल पहला दृष्टिकोण ही छाया रहा है। अधिनियम के व्यापक सामाजिक फायदों की स्वीकृति से इस मुद्दे को भिन्न आलोक में देखा जा सकेगा।

तीन भय

प्रस्तावित रोजगार गारंटी अधिनियम को भारत में सामाजिक नीति की बृहत्तर संकल्पना के रूप में देखना बड़ा महत्वाकांक्षी लग सकता है। इस संकल्पना में सामाजिक व्यय में बड़े पैमाने पर बढ़ोतरी तथा उसकी संरचना में क्रांतिकारी सुधार, दोनों शामिल हैं।

भारत में सरकार का सामाजिक व्यय बमुश्किल सघउ का 6 प्रतिशत है जबकि अमरीका में यह 17 प्रतिशत, इंग्लैंड में 26 प्रतिशत तथा स्वीडन में 36 प्रतिशत है। इसके अलावा, जो भी राशि खर्च की जाती है उसका प्रभाव बहुत थोड़ा होता है। इसके बावजूद, चाहे स्वास्थ्य रक्षा कर क्षेत्र हो अथवा प्राथमिक शिक्षा, बाल पोषण या सामाजिक सुरक्षा का क्षेत्र, प्रभावकारी, कम लागत वाले हस्तक्षेपों की कमी नहीं है। आज समय की मांग है कि सामाजिक व्यय बढ़ाया जाए, साथ ही इस

व्यय को उन हस्तक्षेपों पर केंद्रित किया जाए जो प्रभावी हों।

रोजगार गारंटी अधिनियम इस दृष्टिकोण में एकदम फिट बैठता है। ग्रामीण परिवारों को आर्थिक असुरक्षा से बचाने का एकमात्र सुज्ञात तरीका यह है कि मांग पर राहतकारी रोजगार का सार्वभौम अधिकार (काम करने में असमर्थ लोगों के लिए सीधी राहत सहित) दिया जाए। इस दृष्टिकोण ने सूखा राहत के संदर्भ में तुलनात्मक रूप से बेहतर काम किया है। हमें यह कभी नहीं भूलना चाहिए कि यदि संकट पूर्ण समय में बड़े पैमाने पर रोजगार सृजन न किया जाता तो विगत पचास वर्षों में भारत में अनेक दुर्भिक्ष आए होते। महाराष्ट्र की रोजगार गारंटी स्कीम ने रोजगार–आधारित सामाजिक सुरक्षा की स्थायी प्रणाली लागू किए जाने की संभावना जता दी है। प्रस्तावित रोजगार गारंटी अधिनियम की रचना इन्हीं अनुभवों पर आधारित है– यह अंधकार में छलांग लगाने जैसा नहीं है।

रोजगार गारंटी अधिनियम से जुड़े तीन प्रकार के भय का निराकरण जरूरी है। पहला यह कि व्यापक भ्रष्टाचार की वजह से धन की बर्बादी होगी। इस संदर्भ में राजीव गांधी की इस उक्ति का प्रायः हवाला दिया जाता है कि गरीबी–उन्मूलन कार्यक्रमों पर खर्च किए जाने वाले प्रत्येक एक रुपये में से मात्र 15 पैसे ही वस्तुतः उनलोगों तक पहुंच पाते हैं। लेकिन यह एक तथ्य है कि इस बहुप्रचारित आंकड़े को कभी भी प्रमाणित नहीं किया गया। इसके अलावा, यह भी महत्वपूर्ण है कि अलग–अलग कार्यक्रमों पर किए जाने वाले सार्वजनिक व्यय के संदर्भ में इसका प्रभाव काफी सीमा तक अलग–अलग होता है। निश्चित रूप से अनेक कार्यक्रमों के ऐसे भी उल्लेखनीय उदाहरण हैं जिनके अंतर्गत बेहतर काम किया गया है। इनमें राहत कार्य शामिल हैं। दूसरे भ्रष्टाचार की संस्कृति अपरिवर्तनीय नहीं है। राजस्थान तथा अन्य स्थानों के हाल के अनुभवों से प्रदर्शित होता है कि कानूनी कार्यवाही (सशक्त सूचना के अधिकार कानून सहित) तथा सामाजिक कार्यवाही, दोनों का प्रयोग कर सार्वजनिक कार्य से भ्रष्टाचार को समाप्त किया जा सकता है।

दूसरा भय यह है कि रोजगार गारंटी अधिनियम से वित्तीय दिवालियेपन की स्थिति उत्पन्न हो जाएगी। जैसा कि पहले उल्लेख किया जा चुका है, रोजगार गारंटी की लागत 2005–06 में सघउ के 0.5 प्रतिशत से बढ़कर 2008–09 में जैसे–जैसे समूचे देश में इसे लागू किया जाएगा, सघउ का एक प्रतिशत हो जाएगा। हालांकि यह अनुमान तुलनात्मक रूप से आदर्श स्थितियों पर आधारित है जिनमें अधिनियम अपने वायदे पर खरा उतरेगा। यदि ऐसा हुआ, तो सघउ का एक प्रतिशत अधिकांश ग्रामीण परिवारों की भयंकर गरीबी से रक्षा करने के लिए दिया जाने वाला तर्कसंगत मूल्य होगा। लेकिन अधिक संभावना है कि औपचारिक वैधानिक गारंटी के बावजूद सरकार अपना खर्च नियंत्रित करने के तरीके ढूंढेगी। वह आवेदन–प्रक्रिया को दुरूह बनाने, आवेदक के गांव से काफी दूर उसे काम देने, न्यूनतम मजदूरी से कम पारिश्रमिक का भुगतान करने सहित अन्य ऐसे उपाय करेगी जिससे लोगों के लिए अपने अधिकार का दावा करना कठिनतर हो जाए। महाराष्ट्र में यही हुआ और वहां रोजगार गारंटी कार्यक्रम की लागत कम होकर सघउ का मात्र 0.2 प्रतिशत रह गई।

केंद्र सरकार ने इस उदाहरण का अनुकरण करने में रत्ती भर समय नहीं गंवाया। उसने इसमें एक नई धारा शामिल कर दी जिसके अनुसार यह अधिनियम 'उन्हीं इलाकों और उन्हीं अवधियों' जैसा कि अधिसूचित किया जाए' में प्रभावी होगा। इससे रोजगार गारंटी का मूल मकसद परास्त हो जाएगा क्योंकि इससे केंद्र सरकार को किसी भी समय इस कार्यक्रम को स्थगित करने की अनुमति मिल जाएगी। इस आलोक में देखने पर, वास्तविक भय यह नहीं होता कि रोजगार गारंटी अधिनियम से वित्तीय दिवालियेपन की स्थिति पैदा हो जाएगी, बल्कि यह है कि सुनिश्चित रोजगार पर सरकारी व्यय सघउ का अनुमानित एक प्रतिशत के आसपास पहुंचने में अनेक वर्ष लग जाएंगे।

तीसरा भय यह है कि सरकार अंतहीन विवादों में उलझ जाएगी, क्योंकि पीड़ित मजदूर स्थानीय प्राधिकारियों को अदालत में ले जाएंगे। एक बार फिर यह व्यावहारिक अनुभव के विपरीत है। क्या महाराष्ट्र में ऐसा हुआ? क्या ऐसा न्यूनतम मजदूरी कानूनों के संदर्भ में हुआ जबकि न केवल निजी क्षेत्र में, बल्कि सार्वजनिक क्षेत्र में भी इसका निर्लज्ज उल्लंघन किया गया? क्या यह सूचना का अधिकार कानून के साथ हुआ जिसका उल्लंघन ज्यादा आसान है? क्या यह प्राथमिक शिक्षा को मौलिक अधिकार बनाए जाने पर हुआ? कतई नहीं। सच्चाई यह है कि आम भारतीय नागरिक अनेक कारणों से कोर्ट–कचहरी से डरते हैं और वे उनसे भरसक दूर रहना चाहेंगे, उनके आसपास भी फटकना नहीं चाहेंगे। कुछ जनरुचि मामले दायर हो सकते हैं, लेकिन वह भी बुरी बात नहीं होगी।

रोजगार गारंटी अधिनियम से जुड़े भय इसकी कार्यविधि को न समझ पाने के कारण हैं। एक भोली–भाली धारणा यह है कि एक बार लागू हो जाने के बाद यह कानून तात्कालिक तथा यांत्रिक रूप से काम करने लगेगा। व्यवहार में यह कानून निजी नियोक्ताओं और सरकारी अधिकारियों की असीमित ताकत के विरुद्ध सतत रूप से संघर्षरत मजदूरों को थोड़ी सी मोल–तोल की शक्ति देने के अलावा और कुछ खास नहीं कर पाएगा। मुझे संदेह है कि अधिकार हरण का व्यक्तिगत अनुभव रखने वाला कोई भी व्यक्ति असंगठित मजदूरों को रोजगार गारंटी अधिनियम द्वारा प्रदत्त थोड़ी–सी मोल–तोल की ताकत सौंपने में संकोच करेगा।

बेरोजगार गारंटी विधेयक?

राष्ट्रीय रोजगार गारंटी विधेयक, 2004 को 21 दिसंबर, 2004 को संसद के पटल पर रखा गया। सिद्धांततः यह एक स्वागतयोग्य कदम है। दुर्भाग्य से इस विधेयक को इस कदर कम कर दिया गया है कि यह रोजगार गारंटी के उद्देश्यों को परास्त कर देता है।

रोजगार गारंटी अधिनियम का मुख्य उद्देश्य अवाम को काम के अपने संवैधानिक अधिकार के बुनियादी पहलू के बारे में सरकार से दावा करने के योग्य बनाना है। ऐसा हो, इसके लिए जरूरी है कि अधिनियम उन्हें प्रभावी तथा टिकाऊ अधिकार दे। इसका लक्ष्य वंचितों को शक्ति देना तथा संबद्ध अधिकारियों द्वारा कर्तव्यपालन में किसी प्रकार की लापरवाही के विरुद्ध व्यापक उपाय करना है। संबद्ध नागरिकों ने इसी भावना के साथ अधिनियम का प्रारूप तैयार किया जिसे राष्ट्रीय सलाहकार परिषद ने परिवर्धित किया था।

दुर्भाग्यवश संसद के पटल पर रखा गया विधेयक राष्ट्रीय सलाहकार परिषद के प्रारूप का उपहास है। इसमें एक ऐसे नौकरशाह की सुविधा से बड़े पैमाने पर परिवर्तन किया गया है जो सरकार की जिम्मेदारियां कम–से–कम करना चाहता है। यह सुनिश्चित करने के सारे उपाय किए गए हैं कि सरकार जब चाहे खेल के नियम बदल दे।

सलाहकार परिषद के प्रारूप की एक विशेषता यह थी कि यह सार्वभौमिकता और आत्मचयन के दोहरे सिद्धांत पर आधारित था। इसमें सभी परिवार आवेदन कर सकते थे और अधिनियम को पांच वर्ष के भीतर समूचे ग्रामीण भारत में लागू किया जाना था। पात्रता आधार को अनावश्यक माना गया था, क्योंकि न्यूनतम मजदूरी पर अनियमित शारीरिक श्रम करने की इच्छा अपने आप में जरूरत का द्योतक है। आत्मचयन प्रणाली की प्रभावशीलता राहत कार्यों में भारत के सुदीर्घ अनुभव पर आधारित है।

संसद में प्रस्तुत विधेयक में सार्वभौमिकता तथा आत्मचयन से पूरी तरह पलायन किया गया है। सबसे पहले तो विधेयक में इसे समूचे ग्रामीण भारत में समयबद्ध रूप से लागू करने की कोई गारंटी नहीं है। जिन इलाकों में यह अधिनियम लागू होगा, वहां भी रोजगार गारंटी केवल 'राज्य के उन्हीं इलाकों में और उसी अवधि तक जो केंद्र सरकार द्वारा अधिसूचित की जाए' लागू होगा। दूसरे शब्दों में, इस गारंटी को कहीं भी और किसी भी वक्त वापस लिया जा सकता है।

इसी त्वरा में विधेयक रोजगार गारंटी और बेरोजगारी भत्ता, दोनों को 'निर्धन परिवारों' तक सीमित करने की अनुमति देता है। यह तटस्थ प्रतीत होता है, लेकिन वास्तव में यह बेहद खतरनाक है। 'निर्धन परिवारों' की पहचान कैसे की जाएगी? विधेयक में निर्धन परिवारों की परिभाषा संबद्ध वित्तीय वर्ष के दौरान गरीबी रेखा से नीचे रहने वाले परिवारों के रूप में दी गई है। लेकिन यह महज पुनरुक्ति जैसा है, इसमें कोई व्यावहारिक दिशा–निर्देश नहीं है। व्यवहार में राज्य सरकारों द्वारा रोजगार गारंटी कार्यक्रमों को बीपीएल कार्डधारियों तक सीमित करने की पूरी संभावना है। लेकिन बीपीएल सूची को बेहद अविश्वसनीय माना जाता है और इस सीमा की वजह से अनेक निर्धन परिवार कार्यक्रम का लाभ पाने से वंचित रह जाएंगे। इससे ग्रामीण परिवारों को आर्थिक असुरक्षा से बचाने का रोजगार गारंटी का मुख्य प्रयोजन परास्त हो जाएगा। इसके अलावा इस दृष्टिकोण से गरीबी रेखा से नीचे तथा उसके ऊपर जीवनयापन करने वाले परिवारों के बीच घातक सामाजिक विभाजन और बढ़ेगा।

विधेयक में न्यूनतम मजदूरी को हटा दिया गया है। राष्ट्रीय सलाहकार परिषद के प्रारूप में मजदूरों को संबद्ध राज्य में खेतीहर मजदूरों के लिए निर्धारित संवैधानिक न्यूनतम मजदूरी का हक दिया गया था। लेकिन संसद में प्रस्तुत विधेयक के अनुसार इसे एक केंद्रीय मानक के द्वारा विस्थापित किया जा सकता है ("केन्द्र सरकार अधिसूचना जारी कर इस अधिनियम के लिए मजदूरी की दर निर्दिष्ट कर सकती है")। संवैधानिक न्यूनतम मजदूरी से कम भुगतान करने के संदिग्ध कानूनी तथा नैतिक तर्क के अतिरिक्त इससे केंद्र सरकार को, यदि वह चाहे तो अपने कदम वापस खींचने का एक और अवसर मिल जाता है। मजदूरी की दर मनमर्जी कम करके काम की मांग को कम किया जा सकता है।

इस विधेयक के अन्य कई पहलुओं में भी अधिनियम को सरकार के लिए सुरक्षित बनाने की प्रवृत्ति देखी जा सकती है। उदाहरण के लिए, पारदर्शिता प्रावधानों को काफी कम कर दिया गया है। राष्ट्रीय सलाहकार परिषद के प्रारूप में नामों की पंजी तथा अन्य दस्तावेजों को जनता को निःशुल्क अथवा लागत मूल्य का भुगतान कर निरीक्षण के लिए उपलब्ध कराए जाने का प्रावधान था। इसके विपरीत, विधेयक कहता है कि 'कार्यक्रम में निर्दिष्ट शुल्क का भुगतान करने पर' ये दस्तावेज उपलब्ध होंगे। इस तरह अपमानजनक दस्तावेजों को जनता की निगाहों से दूर रखने को कोई नहीं रोक सकता।

इसी प्रकार राज्य सरकारों द्वारा आरंभ किए जाने वाले रोजगार गारंटी कार्यक्रमों की मूल विशेषताओं तथा इन कार्यक्रमों के तहत श्रमिकों के अधिकारों को अधिनियम के मुख्यभाग से हटाकर संलग्न दो अनुसूचियों में ले जाया गया है। इन अनुसूचियों को अधिनियम को संशोधित किए बगैर केंद्र सरकार की अधिसूचना के द्वारा संशोधित किया जा सकता है। इससे केंद्र सरकार को कार्यक्रमों को पटरी से उतारने अथवा श्रमिकों के अधिकारों को कम करने का व्यापक अधिकार मिल जाता है।

निष्कर्ष यह है कि राष्ट्रीय ग्रामीण रोजगार गारंटी विधेयक, 2004 श्रमिकों को राज्य की सदाशयता के भरोसे छोड़ देता है। निश्चित रूप से कोई हितैषी सरकार इस विधायिका का सदुपयोग ग्रामीण गरीबों को बड़े पैमाने पर काम के अवसर प्रदान करने के लिए कर सकती है। साथ ही, इस अधिनियम के अंतर्गत सरकार किसी भी समय अपने स्वैच्छिक अधिकारों का प्रयोग इस पूरी परियोजना को समाप्त करने के लिए कर सकती है। इस संदर्भ में सरकार की सदाशयता पर यकीन करना अनुभव पर उम्मीद की जीत होगी।

कहने का अभिप्राय यह नहीं है कि प्रभावशाली रोजगार गारंटी अधिनियम के लिए संघर्ष को छोड़ देना चाहिए। सिद्धांततः इस विधेयक में अब भी संशोधन किया जा सकता है और संसद के बजट सत्र में इसे पारित किया जा सकता है। लेकिन संपूर्ण रोजगार गारंटी अधिनियम की लोकप्रिय मांग की पुरजोर अभिव्यक्ति के बगैर ऐसा होने की संभावना नहीं है। श्रमिक आंदोलन तथा काम के अधिकार के लिए समर्पित सभी संगठनों के सम्मुख यह एक रोचक चुनौती है। ❑

(लेखक दिल्ली स्कूल ऑफ इकोनोमिक्स के अर्थशास्त्र विभाग में मानद प्रोफेसर हैं)

साभार : योजना

कुरुक्षेत्र मंगाने का पता

विज्ञापन और प्रसार प्रबंधक
प्रकाशन विभाग
पूर्वी खंड–4, तल–7
रामकृष्णपुरम, नई दिल्ली–110066

मूल्य एक प्रति	:	सात रुपये
वार्षिक शुल्क	:	70 रुपये
द्विवार्षिक	:	135 रुपये
त्रिवार्षिक	:	190 रुपये

विदेशों में (हवाई डाक द्वारा)

पड़ोसी देशों में	:	500 रुपये (वार्षिक)
अन्य देशों में	:	700 रुपये (वार्षिक)

गरीबी निवारण के लिए रोजगारोन्मुख विकास

संतोष मेहरोत्रा

विगत दो दशकों के दौरान भारत और चीन के विकास संबंधी अनुभव में सर्वाधिक महत्वपूर्ण यह अंतर है कि चीन ने विकास के क्रम में रोजगार में भी तेजी से वृद्धि की है। यह रोजगार उत्पादन एवं निर्माण क्षेत्र में सर्वाधिक है। चीन की कुल श्रम शक्ति के 22 प्रतिशत को औद्योगिक क्षेत्र में रोजगार प्राप्त है जबकि भारत में यह 16 प्रतिशत (2000) है। चीन में आर्थिक सुधार के पहले दशक के बाद शहरी और ग्रामीण उद्यमों के विस्तार के साथ उसकी निर्धनता में आश्चर्यजनक कमी आई। इसकी वजह यह थी कि इन उद्यमों में ग्रामीण क्षेत्रों के अतिरिक्त श्रम को काम मिल गया। वहां 1978 में उत्पादन क्षेत्र में कुल रोजगार का ग्रामीण क्षेत्रों में हिस्सा जहां एक तिहाई से थोड़ा कम ही था, वहीं सन् 2000 तक यह बढ़कर आधा हो गया।

भारत की तुलना चीन से किए जाने की जरूरत है। दोनों देशों में तीव्र विकास तथा आय में असमानता में वृद्धि के बावजूद चीन में निर्धनता के दायरे में केवल 3–4 करोड़ लोग रह गए हैं, वहां औसत आय बढ़ी है तथा शिक्षा का स्तर और जीवन संभाव्यता भारत की तुलना में काफी अधिक बढ़ी है। इसलिए, दोनों देशों में आय की बढ़ रही असमानता के बावजूद इन दोनों देशों की सामाजिक स्थिति की तुलना नहीं की जा सकती।

रोजगारोन्मुख विकास से गरीबी में कमी आएगी और असमानता बढ़ेगी नहीं लेकिन 1990 के दशक में उत्पादन क्षेत्र की रोजगारपरक नमनीयता में बेहद कमी आई है। श्रमशक्ति में बढ़ोतरी की गति से रोजगार के बढ़ते रहने की एकमात्र वजह सेवा क्षेत्र में बढ़ोतरी रही है। लेकिन इसकी वजह से भारत में कृषि पर निर्भर लोग काफी पीछे छूट गए। नब्बे के दशक में खासतौर पर फसल उत्पादन की वृद्धि धीमी पड़ गई है।

आज भी भारत में कृषि क्षेत्र में 59 प्रतिशत लोग रोजगार पा रहे हैं। हालांकि मध्यम अवधि में श्रम को कृषि से बाहर अंतरित करने की आवश्यकता पड़ेगी, लेकिन सरकार की सीधी कार्यवाही से अगले पांच वर्षों में भारत की ग्रामीण निर्धनता को नाटकीय रूप से कम किया जा सकता है। निर्धन परिवारों को वार्षिक न्यूनतम रोजगार गारंटी प्रदान करने के लिए नई सरकार संसद में एक विधेयक लाएगी। मूल प्रस्ताव के अनुसार, प्रत्येक राज्य में प्रत्येक परिवार से एक व्यक्ति को न्यूनतम मजदूरी दर से हर वर्ष 100 दिनों के रोजगार का संवैधानिक अधिकार दिया जाना था। लेकिन दुर्भाग्यपूर्ण रूप से नए प्रारूप से संवैधानिक अधिकार को निकाल दिया गया है तथा इसे पूरे देश में लागू करने की कोई समय–सीमा निर्धारित नहीं की गई है। आरंभ में यह देश के 150 सबसे गरीब जिलों में लागू होगी।

निम्न आय वाले देश के गरीब बेरोजगार रहकर नहीं जी सकते। भारत के अधिकतर गरीब कामकाजी गरीब हैं। अधिकांश निर्धन परिवार या तो दिहाड़ी वाले हैं, अथवा वे स्वरोजगार में लगे हैं। नियमित रोजगार वाले लोगों के गरीब होने की संभावना कम ही होती है। गरीबों को साल में 100 दिनों का नियमित रोजगार देकर रोजगार गारंटी अधिनियम निर्धनता–आधार को समाप्त करना सुनिश्चित करेगा। 60 रुपये प्रतिदिन के जनसंख्या आधारित औसत न्यूनतम मजदूरी के आधार पर, 100 दिनों के रोजगार से गरीब परिवारों की वार्षिक आय में छः हजार रुपये की वृद्धि हो जाएगी। इससे भारत की दो–तिहाई आबादी को गरीबी रेखा से ऊपर ले आया जा सकेगा।

इससे राष्ट्रीय कोष पर क्या लागत आएगी? द्रेज़ (2004) का अनुमान है कि 2004 के मूल्यों के आधार पर इस कार्यक्रम को चरणबद्ध रूप से लागू करने पर पहले वर्ष (2005) में इस पर आने वाली कुल लागत सकल घरेलू उत्पाद का 0.5 प्रतिशत होगी जो आरंभिक चरण के अंतिम वर्ष (2008) में बढ़कर 1 प्रतिशत हो जाएगी। इसके बाद यह अनुपात कम होने लगेगा, क्योंकि गरीबी रेखा से नीचे के परिवारों की संख्या कम होने लगेगी।

यह कार्यक्रम तथा उसकी लागत महाराष्ट्र में 20 सालों तक सफलतापूर्वक क्रियान्वित किए गए ऐसे ही एक कार्यक्रम पर आधारित है। लेकिन बाद के इस आकलन में श्रम–सामग्री का 60:40 के अनुपात की कल्पना की गई है। महाराष्ट्र में यह अनुपात काफी कम है और इकाई लागत अधिक श्रम–सघनता के साथ कम हो सकती है।

संभावित लाभ

वस्तुतः श्रम–सघनता वाटरशेड विकास, भूमि संवर्धन, बाढ़ नियंत्रण तथा कमांड क्षेत्र विकास जैसे कार्यों में अधिक हो सकती है। इससे न केवल पर्यावरण की रक्षा होगी, वरन् भविष्य में भूमि की उर्वरा में वृद्धि तथा ग्रामीण रोजगार में बढ़ोतरी भी होगी। ग्रामीण भारत में सिंचाई के विकास के लिए बांधों का महत्व बना रहेगा। इसके साथ ही दसवीं योजना में अनेक कम लागत वाले विकल्पों का उल्लेख भी किया गया है। इसमें कहा गया है कि "पारंपरिक जलसंग्रहण संरचनाओं के जीर्णोद्धार, भूजल विकास, लघु सिंचाई प्रणालियों को फिर से बहाल करना, शहरी क्षेत्रों में वर्षा जल संग्रहण तथा वाटरशेड विकास" किया जाएगा। ये विकल्प बांधों के प्रति हेक्टेयर विकास पर आने वाली लागत की तुलना में कम महंगे हैं तथा बांधों के समक्ष उपस्थित होने वाली विस्थापित लोगों के पुनर्वास, वनक्षेत्र के जलमग्न हो जाने तथा भूमि अधिग्रहण जैसी अन्य समस्याएं इनके मार्ग में नहीं आतीं।

इनके अतिरिक्त वाटर शेड विकास को उन्नत बनाने से बार–बार आने वाली बाढ़ से

जीवन और संपदा को होने वाले नुकसान को कम किया जा सकता है तथा सरकार द्वारा भविष्य में बाढ़ राहत कार्य पर आने वाले खर्चे से बचा जा सकता है। रोजगार गारंटी के विरुद्ध तर्क गौण चीजों के लिए चतुर और बड़ी चीजों के लिए मूर्ख बनने जैसा है। लेकिन जैसा कि दसवीं योजना में कहा गया है, इसके लिए "बाढ़ प्रभावित मैदानी इलाकों का वर्गीकरण कर उनका प्रबंधन करने तथा बांधों के रखरखाव में जनभागीदारी" अपेक्षित है।

विकासोन्मुख गतिविधि के लिए सिंचाई संभावनाओं का निर्माण तथा उनके उपयोग के बीच की चौड़ी खाई को पाटना आवश्यक है। दूसरे सिंचाई आयोग ने सत्तर के दशक के आरंभिक वर्षों में ही इस खाई को रेखांकित किया था जिसके परिणामस्वरूप कमांड क्षेत्र विकास कार्यक्रम की शुरुआत की गई थी। सिंचाई के पानी के कुशल उपयोग को स्रोत के ऊपर की नहर प्रणाली के बेहतर रखरखाव एवं स्रोत के नीचे के मैदानी संजाल तथा नालों का विकास कर बड़े पैमाने पर बढ़ाया जा सकता है। कमांड क्षेत्र विकास कार्यक्रम ने इस दिशा में कुछ प्रगति की है लेकिन उनका मूल्यांकन करने पर उनमें कई कमियां पाई गई हैं। आश्चर्य नहीं होना चाहिए जब दसवीं योजना कहती है कि "कमांड क्षेत्र विकास कार्यक्रम की सफलता के लिए इस प्रणाली को जल उपयोगकर्ता संघों को रखरखाव के लिए सौंप दिया जाना चाहिए। इस प्रकार, कमांड क्षेत्र विकास कार्यक्रम में सहभागिता को पूर्ण सिंचाई प्रबंधन की संकल्पना से जोड़ा जाना चाहिए।"

ऐसी योजनाओं को यदि रोजगार गारंटी से जुड़े कार्यों के साथ समन्वित कर लिया जाए तो घरेलू आय पर सकारात्मक प्रभाव पड़ेगा क्योंकि, इससे कृषि कार्यों में मजदूरी तथा मानवपूंजी में निवेश बढ़ जाएगा। निर्धन माता–पिता के बच्चों के स्कूल छोड़ देने की एक प्रमुख वजह यह है कि वे शिक्षा पर होने वाले प्रत्यक्ष तथा परोक्ष व्यय को वहन नहीं कर पाते। परिवार की आय बढ़ने से पढ़ाई छोड़ने वालों की संख्या में कमी आएगी, साथ ही भूमि की उत्पादकता में वृद्धि होगी। ये आपस में मिलकर आर्थिक विकास का प्रभाव बढ़ा सकेंगे।

इसके अलावा, भारत को कर पर सकल घरेलू उत्पाद का अनुपात बढ़ाना चाहिए। 1990–01 के वर्षों के दौरान निम्न आय वाले देशों में केंद्रीय कर राजस्व सकल घरेलू उत्पाद का 14.1 प्रतिशत था जबकि भारत में केंद्रीय स्तर पर सकल घरेलू उत्पाद पर कर संग्रह वर्ष 2001–02 के दौरान मात्र 8.2 प्रतिशत तथा 2003–04 के दौरान 9.3 प्रतिशत था। इसकी तुलना चीन से करें, जहां 2003 में यह 22 प्रतिशत था। आय में वृद्धि के साथ सकल घरेलू उत्पाद पर कर राजस्व के अनुपात में वृद्धि हो जाती है। मध्यम आय वाले देशों में यह अनुपात 18.5 प्रतिशत तथा उच्च मध्यम आय वाले देशों में 23.1 प्रतिशत है। भारत में आय में वृद्धि के बावजूद सकल घरेलू उत्पाद पर केंद्रीय कर अनुपात कमा ही है, यह 1987–88 के 10.6 प्रतिशत से कम होकर 2003 में 9.3 प्रतिशत ही रह गया है (भारत सरकार)। सकल घरेलू उत्पाद की तुलना में केंद्र सरकार के कर को अस्सी के दशक के अंतिम वर्षों के स्तर पर ले आने मात्र से रोजगार गारंटी अधिनियम पर होने वाले व्यय के भुगतान से अधिक राजस्व इकट्ठा किया जा सकेगा।

श्रम की खपत

इस विधेयक के क्रियान्वयन से श्रम को कृषि से अंतरित करने की आवश्यकता समाप्त नहीं हो जाएगी। क्योंकि कृषिक्षेत्र में केवल कुछ लोगों को ही नियमित रोजगार उपलब्ध हो पाता है। इस क्षेत्र में अधिकतर लोग या तो स्वरोजगार में लगे होते हैं अथवा दिहाड़ी श्रमिक होते हैं। यह भी जरूरी है कि नए नियमित काम का बहुलांश अल्प कुशल श्रमिकों के लिए हो, क्योंकि दिहाड़ी मजदूरों को केवल 1.8 वर्ष तथा स्वरोजगार में लगे लोगों को 3. 7 वर्ष की शिक्षा प्राप्त होती है। इसके मुकाबले नियमित रोजगार वाले कर्मचारियों की औसत शिक्षण अवधि 7.8 वर्षों (घोष, 2004) की होती है। इसका अभिप्राय यह हुआ कि विकास की ऐसी रणनीति अपनाई जाए जिसमें निर्यात योग्य वस्तुओं के साथ–साथ विशाल तथा निरंतर बढ़ रहे घरेलू बाजार के लिए ऐसी वस्तुओं का उत्पादन भी किया जाए जिसमें अधिक कौशल की आवश्यकता न हो।

लेकिन गरीबों की तादाद को देखते हुए उन्हें कृषि से बाहर रोजगार में लगाने से भी सभी काम करने वाले निर्धनों की गरीबी दूर नहीं की जा सकती। इसलिए रोजगार गारंटी अधिनियम के जरिये प्रत्यक्ष रोजगार–सृजन इस नीति का एक अनिवार्य अंग है।

इसके अतिरिक्त कुल रोजगार में बाद में औद्योगीकरण हुए देशों के उद्योग का अधिकतम हिस्सा उत्पादन के उत्कर्ष पर औद्योगिक देशों के हिस्से से कम है। इंग्लैंड में यह 55 प्रतिशत (1901), जापान में 37 प्रतिशत (1973) तथा कोरिया में 33 प्रतिशत (1994) रहा है जबकि चीन में यह 22 प्रतिशत (2000) और भारत में 16 प्रतिशत है। बाद में औद्योगीकरण करने वाले देश पहले के औद्योगिक देशों से प्रौद्योगिकी उधार लेते हैं और समय के साथ–साथ प्रौद्योगिकी की श्रमोन्मुखता कम होती जाती है। इसलिए, कुल रोजगार में नियमित मजदूरी वाले रोजगार की उल्लेखनीय वृद्धि नहीं होगी और भारत सहित अधिकांश विकासशील देशों में स्वरोजगार का हिस्सा महत्वपूर्ण बना रहेगा। इससे भी दिहाड़ी श्रमिकों की संख्या कम करने और रोजगार गारंटी पर विचार करने की जरूरत रेखांकित होती है। निर्धनों को समयबद्ध रोजगार की संवैधानिक गारंटी देकर यह सुनिश्चित किया जा सकेगा कि ग्रामीण भारत में रहने वाले दो तिहाई निर्धन परिवार हर साल 6000 रुपये की अतिरिक्त आय की मदद से गरीबी रेखा से ऊपर उठ सकें।

पारदर्शिता सुनिश्चित करना

आलोचकों का तर्क है कि इस अधिनियम से नौकरशाही द्वारा भ्रष्टाचार के अवसरों का विस्तार होगा। लेकिन देशभर में देखा गया है कि सरकारी व्यय की प्रभावी सामुदायिक निगरानी न केवल संभव है, यह कारगर भी है। इस तरह की कारगर निगरानी के लिए सूचना के अधिकार तथा सामाजिक लेखा परीक्षा की जरूरत होती है। दिल्ली, राजस्थान, तमिलनाडु, कर्नाटक, महाराष्ट्र तथा गोवा जैसे अनेक राज्यों ने सूचना का अधिकार संबंधी कानून लागू किया है। मध्य प्रदेश तथा उत्तर प्रदेश जैसे राज्यों ने लोगों को सूचना उपलब्ध कराने के लिए कार्यपालक आदेश जारी कर रखा है। जनवरी 2003 में भारत सरकार द्वारा लागू किया गया *सूचना की आजादी* अधिनियम (एनसीपीआरआई, 2004) भी इस दिशा में एक उल्लेखनीय उपलब्धि है। एमकेएसएस जैसे सामाजिक संगठनों ने दिल्ली और राजस्थान में यह दिखा दिया है कि सूचना के अधिकार के द्वारा किस तरह नौकरशाही में भ्रष्टाचार को समाप्त किया जा सकता है।

इसलिए इसके आलोचकों को विषयांतरण का दोषी माना जा सकता है।

असली समस्या यह है कि अधिनियम के वर्तमान स्वरूप में महत्वपूर्ण तत्वों का अभाव है। इसमें इस आशय का कोई स्पष्ट प्रावधान नहीं किया गया है कि रोजगार गारंटी कार्यक्रमों का नियंत्रण, नियोजन एवं निगरानी पंचायती राज संस्थाओं द्वारा किया जाना चाहिए। इसके अंतर्गत यह उल्लेख होना चाहिए कि निगरानी एजेंसियां सभी स्तरों पर चुने गए निकायों के प्रति उत्तरदायी और जवाबदेह होंगी तथा ग्राम सभाओं के द्वारा नियमित रूप से सामाजिक लेखा परीक्षा की जानी चाहिए। यह वास्तविक जनतांत्रिक विकेंद्रीकरण का सार होगा।

गायब तत्व

विधेयक के संशोधित प्रारूप में कई तत्व गायब हैं। पहला, पूरे देश में इस अधिनियम का समयबद्ध रूप से विस्तार करने का कोई प्रावधान नहीं है। दूसरा, निगरानी और सामाजिक लेखापरीक्षा का अधिकार पंचायती राज संस्थाओं के पास नहीं है। उम्मीद की जाती है कि जिस संसदीय समिति के पास विधेयक के प्रारूप को विचार करने के लिए भेजा गया है, वह इन मुद्दों पर गंभीरतापूर्वक विचार करेगी।

इनके अलावा, इसमें विधेयक को कमजोर बनाने वाली अन्य धाराएं भी हैं। पहला, वर्तमान प्रारूप में कहा गया है, "न्यूनतम मजदूरी अधिनियम, 1948 में शामिल प्रावधानों के बावजूद केंद्र सरकार इस कार्यक्रम के तहत रोजगार प्राप्त श्रमिकों के भुगतान के लिए मजदूरी की दर तय कर सकती है।" इस तरह की धारा का इस्तेमाल कार्यक्रम क महत्व कम करने तथा मजदूरी की दर बहुत कम निर्धारित करने के लिए किया जा सकता है।

दूसरे, प्रारूप में केवल 'निर्धन' परिवारों को रोजगार भत्ता देने की बात कही गई है। लेकिन ऐसे परिवारों की पहचान के लिए आमतौर पर प्रयोग की जाने वाली गरीबी रेखा से नीचे के लोगों की सूची को प्रायः अविश्वसनीय माना जाता है। गरीबी रेखा से उपर के लोगों को रोजगार न दे पाने की स्थिति में विधेयक में कोई प्रावधान न कर उन्हें इसके दायरे से बाहर छोड़ दिया गया है। यह पारंपरिक रूप से इसके सफल तत्व के रूप में सुज्ञात 'आत्मचयन' के सिद्धांत की अवहेलना करता है।

तीसरे, भूमि कानून पहले से ही महिलाओं को लेकर पूर्वाग्रहग्रस्त हैं। इसके आलोक में यह विधेयक सभी ग्रामीण क्षेत्रों में व्याप्त लिंग आधारित भेदभाव को इस आशय की एक धारा शामिल कर थोड़ा दुरुस्त कर सकता था कि किसी प्रखंड में रोजगार प्राप्त करने वाले श्रमिकों की कम–से–कम एक तिहाई महिलाएं होंगी। उदाहरण के लिए, यदि ग्रामीण घरों में बनाए जाने वाले शौचालयों के कार्यक्रम में महिलाओं को भी शामिल कर लिया जाए तो इससे गरीब ग्रामीण महिलाएं दोगुना स्वाधीन होंगी– एक तो उनके हाथों में कमाई होगी, दूसरे वे बाहर मलत्याग के लिए जाने में शामिल अपमान, असुरक्षा, गोपनीयता के अभाव और स्वास्थ्य संबंधी जोखिम से बच पाएंगी। ❑

(लेखक संयुक्त राष्ट्र विकास कार्यक्रम में पूर्व एवं दक्षिण एशिया क्षेत्र के लिए क्षेत्रीय आर्थिक सलाहकार–निर्धनता एवं प्रशासन हैं)

साभार : योजना

ग्रामीण विकास

● 14 नवम्बर, 2004 को प्रधानमंत्री ने आंध्र प्रदेश में रंगारेड्डी जिले के अलूर गांव में काम के बदले अनाज का राष्ट्रीय कार्यक्रम प्रारंभ किया। ● इस कार्यक्रम के अंतर्गत देश के चुने हुए 150 सबसे पिछड़े जिलों में आमदनी बढ़ाने वाले अतिरिक्त रोजगार उपलब्ध कराए जाएंगे। ● काम के बदले अनाज का राष्ट्रीय कार्यक्रम पूरी तरह केन्द्र द्वारा संचालित कार्यक्रम है। इस में जल संरक्षण,सूखे से बचाव, बाढ़ नियंत्रण, ग्रामीण विकास और गांवों को सड़कों से जोड़ने पर जोर दिया जाएगा। ● संसद के आगामी सत्र में रोजगार गारंटी विधेयक पेश किया जाएगा। ● इसके तहत प्रत्येक ग्रामीण परिवार के कम–से–कम एक सक्षम व्यक्ति को मजदूरी की न्यूनतम दर पर परसंपत्तियों से सृजन संबंधी सार्वजनिक कार्यों में साल में कम– से–कम 100 दिन के रोजगार की कानूनी गारंटी मिल जाएगी। ● संपूर्ण ग्रामीण रोजगार योजना नये जोश से लागू की जा रही है और इस पर इसके स्थानीय लाभार्थियों द्वारा कड़ी निगरानी और सर्तकता बरतने के लिए प्रणाली बनायी गयी है। ● स्व–रोजगार के तमाम पहलुओं का ध्यान रखने के लिए स्वर्ण जयंती ग्राम स्व– रोजगार योजना के अंतर्गत एक समग्र कार्यक्रम बनाया गया। इसके लागू होने के बाद 19.79 लाख स्व–सहायता समूह गठित किये गये हैं और स्व–रोजगार के लिए 45 लाख लोगों को 9559.12 करोड़ रुपये की सहायता दी गयी है। ● ग्रामीण क्षेत्रों में शहरी सुविधाओं के प्रावधान की योजना के अंतर्गत 2004–05 में परीक्षण के तौर पर 6 परियोजनाएं शुरू की जानी हैं। ● 10 राज्यों ने 1000 से अधिक की आबादी वाली सभी बस्तियों को सड़क संपर्क से जोड़ दिया है। ये राज्य हैं : आंध्र प्रदेश, गोवा, हरियाणा, कर्नाटक, केरल, महाराष्ट्र, नागालैंड, पंजाब, राजस्थान और तमिलनाडु। इसके अलावा गुजरात, मेघालय, मिजोरम और सिक्किम यह लक्ष्य प्राप्त करने के बहुत समीप पहुंच गए हैं। ● ग्रामीण विकास मंत्रालय ने गरीबी रेखा से नीचे गुजर–बसर करने वाले सभी बेघर लोगों को अगले पांच साल में आवास उपलब्ध कराने के लिए आवश्यकताओं का पता लगाया है और इंदिरा आवास योजना के तहत करीब 118 लाख मकान बनाए जा चुके हैं। ● पेयजल आपूर्ति विभाग को 2004 तक सभी गांवों में स्वच्छ पेयजल की हर हालत में व्यवस्था करने का दायित्व सौंपा गया है। ● परती भूमि के विकास की समन्वित योजना के तहत ग्रामीण क्षेत्रों में रोजगार को बढ़ावा दिया जा रहा है। ● मरुस्थल विकास कार्यक्रम के अंतर्गत 215 करोड़ रुपये का आबंटन किया गया है। इससे 7 राज्यों के 40 जिलों में 245 विकास खंडों का लाभ होगा। ❑

रोजगार गारंटी कानून

ग्रामीण नियोजन की ओर एक महत्वपूर्ण कदम

डा. कामेश्वर पंडित और डा. अखिलेश कुमार सिंह

रोजगार गारंटी कानून संयुक्त प्रगतिशील गठबंधन वाली सरकार की एक अनुपम भेंट है। सरकार द्वारा न्यूनतम साझा कार्यक्रम के अन्तर्गत ग्रामीण क्षेत्र में रोजगार के अवसर प्रदान करने एवं ग्रामीणों को गरीबी रेखा से ऊपर लाने की दिशा में यह एक मूलभूत प्रयास है। यह कानून रोजगार की कानूनी गारंटी देता है। प्रस्तावित रोजगार गारंटी अधिनियम एक ऐसा कानून है जिसके तहत कोई भी वयक्ति जो शारीरिक श्रम करने की इच्छा रखता है उसे न्यूनतम मजदूरी दर के तहत–15 दिनों के अन्दर रोजगार पाने का वैधानिक अधिकार होगा। यदि 15 दिनों के अन्दर उसे काम नही मिलता है तो वह व्यक्ति बेरोजगारी भत्ता पाने का अधिकारी होगा। यह अधिनियम न केवल श्रमिकों को रोजगार की गारन्टी प्रदान करता है बल्कि नियोजित श्रमिकों को सामाजिक सुरक्षा सामाजिक बीमा, पेंशन एवं उनके स्वास्थ्य से संबंधित लाभों को देखने पर ऐसा प्रतीत होता है कि सरकार ग्रामीण श्रमिको को उनके सभी संवैधानिक अधिकारों को सुनिश्चित करने का दायित्व उठाने के लिए कृत संकल्प है।

यह अधिनियम पूर्व की तमाम योजनाओं जैसे रोजगार आश्वासन योजना, राष्ट्रीय ग्रामीण रोजगार कार्यक्रम, जवाहर रोजगार योजना, आदि से भिन्न इसलिए है कि ये सभी योजनाएं रोजगार के सन्दर्भ में किसी प्रकार की कानूनी हकदारी स्थापित नहीं करती थीं और इसके लिए पूर्णरूप से संबंधित सरकारों एवं अधिकारियों पर जवाबदेही सुनिश्चित नहीं किया जा सकता था। जबकि यह अधिनियम रोजगार के सुनिश्चित किया जाने का दायित्व न्यायिक रूप से स्थापित करता है। हालांकि रोजगार गारंटी कानून कोई नया कानून नहीं है इस तरह का प्रयास 1976 में महाराष्ट्र सरकार कर चुकी है जो आज तक लागू है। किन्तु अन्य राज्यों में इस तरह के अधिनियम नही बन सके। भारत सरकार का यह प्रयास भारत के सम्पूर्ण राज्यों में रोजगार गारंटी अधिनियम में एकरूपता प्रदान करने और उसे समान रूप से लागू कराने की दिशा में महत्वपूर्ण कदम है।

सामाजिक लाभ

- रोजगार गारंटी कानून ग्रामीण परिवारों को गरीबी तथा भूख से बचाने में मददगार होगा। इसके द्वारा भारत के अधिकांश गरीब परिवारों की गरीबी रेखा से ऊपर उठाया जा सकता है।
- इससे गांवों से शहरों की ओर रोजगार की तलाश में हो रहें श्रमिकों के पलायन में कमी आयेगी।
- रोजगार का आश्वासन महिलाओं को सबल एवं स्वावलम्बी बनायेगा क्योंकि काम करने वाली महिलाओं को रोजगार सुनिश्चित किये जायेंगे।
- रोजगार गारंटी कानून गांवों में उपयोगी परिसम्पतियों के निर्माण का अवसर प्रदान करेगा।
- इससे गांवों व समाज में समतापूर्ण सामाजिक व्यवस्था का जन्म होगा जिसका असर देश में एक स्वच्छ एवं सृजनात्मक सरकार के चयन में भी होगा।
- रोजगार गारंटी कानून उत्प्रेरण प्रक्रिया अपने आप में ही बेहद मूल्यवान होगी। इससे भारत के अधिकांश भाग में श्रमिक आन्दोलन को जीवनदान मिलेगा और श्रमिकों के हितों की सुरक्षा हो पायेगी।

विशेषताएं

- अधिनियम के तहत कोई भी व्यक्ति जो शारीरिक श्रम करने की इच्छा रखता है उसे न्यूनतम मजदूरी दर के तहत 15 दिनों के अन्दर रोजगार पाने का अधिकार होगा। यदि 15 दिनों के अन्दर उसे काम नहीं मिलता है तो वह व्यक्ति बेरोजगारी भत्ता पाने का अधिकारी होगा।
- इस अधिनियम के तहत कोई भी व्यक्ति जो 18 वर्ष या उससे ऊपर के है वे रोजगार पाने की पात्रता रखते हैं।
- 15 दिन के अन्दर आवेदित व्यक्ति को, जितने दिनों के लिए आवेदन दिया है, रोजगार पाने का अधिकार होगा।
- कार्य का स्थान व्यक्ति के निवास स्थान से 5 किलोमीटर के दायरे में और उसी ब्लॉक में दिया जाना अनिवार्य है। यदि कार्य का स्थान 5 किलोमीटर के दायरे के बाहर है तो व्यक्ति को यात्रा भत्ता देय होगा।
- मजदूर न्यूनतम मजदूरी दर जोकि खेतिहर मजदूरी पर लागू होती है, उसी दर से पाने का अधिकार रखता है। पुरुष एवं महिला श्रमिकों के मजदूरी में कोई अन्तर नहीं होगा और उन्हें समान मजदूरी प्राप्त होगी। अधिनियम का यह प्रावधान संविधान के समता के सिद्धांत पर आधारित है और इसमें पुरुष एवं महिला श्रमिकों के विकास का समान अवसर दिया गया है।
- श्रमिकों को उसका पारिश्रमिक कार्य समाप्त होने के एक माह के अन्दर दिये जाने का प्रावधान है। पारिश्रमिक का भुगतान समुदाय के सम्मुख होगा।
- यदि प्रार्थी को 15 दिनों के भीतर कार्य नहीं मिलता है तो वह व्यक्ति बेरोजगारी भत्ता पाने का अधिकारी होगा। इस प्रारूप

अधिनियम के तहत बेरोजगारी भत्ता न्यूनतम मजदूरी दर का एक तिहाई तय किया जायेगा।

- इस अधिनियम के अन्तर्गत कार्य करने वाले मजदूर विभिन्न सुविधाओं के अधिकारी होगे जैसे कि स्वच्छ पीने का पानी, आपातकालीन स्वास्थ्य चिकित्सा, बच्चों के रख–रखाव और दुर्घटना या मृत्यु होने पर मुआवजा आदि।
- इस अधिनियम के तहत वेतन से 5 प्रतिशत तक की कटौती वित्तीय पेंशन, स्वास्थ्य इश्योरेन्स और मातृत्व सुविधाओं के लिए की जायेगी और यह सुनिश्चित किया जायेगा कि इस योजना के तहत पारदर्शी व प्रभावशाली तरीके से मजदूरों को सामाजिक सुरक्षा का लाभ मिले।

रोजगार गारंटी कार्यक्रम

इस अधिनियम के तहत सरकार रोजगार गारन्टी कार्यक्रम शुरू करेगी और केवल उत्पादक कार्य जो कि प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से उत्पादन को बढ़ाने में स्थायी संसाधनों के निर्माण करने में, पर्यावरण के संरक्षण या जीवन की गुणवत्ता को सुधारने आदि में सहयोग करते हों, शामिल किया जायेगा। इसके लिए जिम्मेदारी ब्लॉक अधिकारी पर होगी या कुछ हद तक ग्राम पंचायतों को भी यह जिम्मेदारी सौंपी जा सकती है। कुछ विशेष कार्यों के लिए ब्लॉक अधिकारी द्वारा ठेकेदारों का भी सहयोग लिया जा सकता है। सभी कार्यक्रम सामूहिक देखरेख में किया जायेगा और सभी कार्यों का समयानुसार सामाजिक अंकेक्षण भी किया जायेगा।

रोजगार गारंटी कार्यक्रम की देखरेख केन्द्रीय रोजगार गारंटी परिषद द्वारा राष्ट्रीय स्तर पर और राज्य रोजगार गारंटी परिषद द्वारा राज्य स्तर पर की जायेगी। कार्यक्रमों के संचालन का वित्तीय भार केन्द्रीय सरकार एवं राज्य सरकार दोनों को वहन करना होगा। श्रमिकों का खर्चा केन्द्रीय सरकार वहन करेगी जबकि उत्पादन सामग्री के खर्च का वहन केन्द्र एवं राज्य सरकार दोनों पर होगा। कार्यक्रमों के सफल संचालन न होने के लिए संबंधित अधिकारियों के ऊपर जबावदेही सुनिश्चित कर दण्डित करने का भी प्रावधान किया जायेगा। इस अधिनियम के लागू होने के 2 वर्षों के भीतर पूरे भारत में विस्तारित किया जायेगा। इस कार्यक्रम के अंतर्गत रोजगार प्राप्त करने वाले श्रमिकों/ग्रामीणों को सबसे पहले ग्राम पंचायत में पंजीकरण करवाना होगा। ग्राम पंचायत इन श्रमिकों का पंजीकरण कर उन्हें 'रोगजार कार्ड' जारी करेगी जिसपर उसका नाम, पता व फोटो आदि लगा होगा। इससे यह सुनिश्चित हो पायेगा कि उन्हें कितने दिन काम मिला, कितना भुगतान उन्हें प्राप्त हुआ और कितना बेरोजगारी भत्ता प्राप्त हुआ है।

वास्तव में रोजगार गारंटी कानून गरीबी उन्मूलन की दिशा में एक महत्वपूर्ण कदम है। क्योंकि सरकार कम से कम 'प्रति परिवार प्रति वर्ष 100 दिन' के मानक से शारीरिक श्रम करने वाले श्रमिकों को रोजगार प्रदान कराने के लिए कटिबद्ध है जैसा कि सरकार ने अपने न्यूनतम साझा कार्यक्रम में उल्लेखित किया है। भारत एक विकासशील राष्ट्र है और आज भी इस ग्रामीण भारत में लगभग 4 करोड़ ऐसे परिवार हैं जो गरीबी रेखा से नीचे जीवनयापन कर रहे है। इसका निहितार्थ होगा कि प्रतिवर्ष 400 करोड़ व्यक्ति दिवसों को रोजगार उपलब्ध करवाना होगा या यों कहें तो किसी भी औसत दिवस पर एक करोड़ से कुछ अधिक लोगों को अर्थात् देश की कुल आबादी के तकरीबन एक प्रतिशत को रोजगार देना होगा। इस कार्यक्रम को संचालित करने में भारत सरकार को उसके कूल सकल घरेलू उत्पाद का लगभग 1 से 2 प्रतिशत तक व्यय करना पड़ सकता है। अतः यह भारत सरकार के लिए एक चुनौतीपूर्ण कदम है। आशा है कि सरकार अपने इस चुनौती पर खरा उतरेगी और इससे ग्रामीण श्रमिकों को भरपूर लाभ मिल सकेगा। साथ ही एक स्वच्छ, स्वास्थ, और चेतनशील समाज तथा राष्ट्र का निर्माण संभव हो सकेगा। ❑

(लेखक पटना विश्वविद्यालय के श्रम एवं सामाजिक कल्याण विभाग में व्याखाता हैं)

लघु उद्योग और कृषि पर आधारित ग्रामीण उद्योग

- लघु उद्योग क्षेत्र की वार्षिक विकास दर 7.78 प्रतिशत से बढ़कर 8.60 प्रतिशत हो गई।
- लघु उद्योग क्षेत्र को ऋण आसानी से उपलब्ध हों, इसके लिए पांच लाख रुपये तक के ऋण के लिए जमानती की शर्त पूरी तरह हटाई गई। 25 लाख रुपये तक ऋण के लिए चयन आधार पर जमानती की आवश्यकता होगी।
- क्लस्टर विकास कार्यक्रम के तहत, राज्य सरकारों, औद्योगिक संघों, वित्तीय संस्थानों और औद्योगिक विकास में संलग्न अन्य संगठनों की सलाह से 59 क्लस्टर्स शुरू कि जा चुके हैं।
- 14 अक्तूबर, 2004 से खादी और ग्रामीण उद्योग आयोग को भंग कर दिया गया है।
- सरकार, भंग आयोग के कामकाज की जांच करने के लिए समिति का गठन करेगी जो आयोग के पुनर्गठन के उपाय सुझाएगी।
- सरकार ने असंगठित/अनियमित क्षेत्र के उद्यमों के लिए डा. अर्जुन सेनगुप्ता की अध्यक्षता में केन्द्रीय मंत्री के दर्जे वाले चार सदस्यीय राष्ट्रीय आयोग का गठन किया है। आयोग अनियमित क्षेत्र के लिए सलाहकार संस्था और निगरानी एजेंसी दोनों का काम करेगा।
- श्रमिक विधानों की अधिकता तथा फार्मों, रजिस्टरों और निरीक्षण की भरमार से पैदा होने वाली प्रशासनिक अड़चनें दूर करने के लिए व्यापक कानून बनाने पर विचार किया जा रहा है।
- लघु उद्योग क्षेत्र की 1.14 करोड़ इकाइयों में 2.71 करोड़ लोगों को रोजगार मिला है। यह क्षेत्र देश के कुल औद्योगिक उत्पादन में 40 प्रतिशत का योगदान देता है और देश के कुल निर्यात में इनका हिस्सा 34 प्रतिशत है। ❑

ग्रामीण गरीबों को रोजगार की गारंटी

डा. जी.एल. पुणताम्बेकर और डा. डी.के. नेमा

केन्द्र की यूपीए सरकार ने अर्थ व्यवस्था के मानवीय चेहरे के संकल्प के साथ सत्ता सम्हाली। राजनैतिक नारेबाजी के परे यह लक्ष्य भारतीय अर्थव्यवस्था के लिये अनिवार्य है। यदि विकास प्रक्रिया से छूट रहे वर्ग की सहायता के लिये किये जा रहे प्रयत्नों को संवैधानिक दर्जा मिलता है तो यह प्रयत्नों की सफलता के लिए एक सद्प्रयास कहा जा सकता है। दिसम्बर माह में संसद में प्रस्तुत 'ग्रामीण गरीबों के लिये रोजगार गारंटी बिल, 2004' ऐसे ही प्रयत्नों की श्रेणी में आता है। गरीबों के लिये रोगजगार की गारंटी की अवधारणा और भारतीय अर्थ व्यवस्था में इसकी प्रासंगिकता दोनों ही वर्तमान समय में ज्वलंत विषय हैं और इनकी व्यापक समीक्षा की जानी चाहिये।

ग्रामीण गरीबों को रोजगार की गारंटी के संदर्भ में भारतीय अर्थव्यवस्था की प्रकृति और स्वरूप पर दृष्टिपात आवश्यक है। हमारे अर्थतंत्र का ग्राम प्रधान स्वरूप शक्ति और चुनौती दोनों है। बढ़ती जनसंख्या, परम्परागत कृषि, मानसून पर निर्भरता, अशिक्षा और अदृश्य बेकारी जहां कृषि क्षेत्र के निरन्तर उत्तम परिणामों के बाद भी चुनौतियां हैं वहीं इन सभी परिस्थितियों के बीच हरित क्रांति की सफलता वह शक्ति भी है जिससे समस्याओं को हल करने की आशा का संचार होता है। वैश्वीकरण और उदारीकरण की नीतियों का हमारे परम्परागत कृषि क्षेत्र पर कैसा प्रभाव पड़ेगा, यह आज प्रमुख प्रश्न है। इससे जहां नई–नई चुनौतियां मिली हैं वहीं उज्ज्वल अवसर भी उपलब्ध हैं। ऐतिहासिक दृष्टि से विचार करने पर यह स्पष्ट होता है कि स्वतंत्रता के बाद नियोजित विकास की प्रक्रिया से कृषि तथा उद्योग जगत दोनों क्षेत्र नई ऊंचाइयों पर पहुंचे और भारतीय अर्थव्यवथा की प्रतिष्ठा विश्व में जमने लगी। यह विडम्बना ही है कि इन सभी अनुकूलताओं के बीच 'गरीबी' और 'बेरोजगारी' के प्रश्न प्रभावी ढंग से हल नहीं हो सके। विकास प्रक्रिया की बड़ी असफलता यह रही कि अर्थतंत्र की कृषि क्षेत्र पर निर्भरता को कम नहीं किया जा सका। आज भी भारत की 70 प्रतिशत श्रम–शक्ति की जीविका कृषि या उससे जुड़े रोजगार ही हैं। यद्यपि सकल घरेलू उत्पाद में 1950–51 में कृषि क्षेत्र की 52 प्रतिशत भागीदारी 2003–04 में घटकर 22 प्रतिशत हुई है परन्तु यह दृश्य रोजगार में दिखाई नहीं देता। 1994–2000 की अवधि में जनसंख्या वृद्धि दर 1.93 एवं श्रम शक्ति 1.03 प्रतिशत रही जबकि रोजगार वृद्धि दर केवल 0.98 प्रतिशत होना संकट के बढ़ने का संकेत भी है। लाकड़ावाला फार्मूले के अनुसार देश की गरीबी का अनुमान प्रतिशत कमी अवश्य प्रदर्शित करता है परन्तु संस्था की दृष्टि से समस्या की विकरालता कम नहीं है। वर्ष 1993–94 में इस आधार पर गरीबी रेखा से नीचे जीवन यापन करने वाली 35.37 प्रतिशत जनसंख्या भी जो 1999–2000 में घटकर 26.1 प्रतिशत हो गई। इस प्रवृत्ति के बाद भी सन् 2007 तक गरीबी के आकार का जो अनुमान है वह 22 करोड़ अर्थात 19.3 प्रतिशत है। इसमें से 17 करोड़ गरीब (21 प्रतिशत) होना यह संकेत देता है कि गांवों में गरीबी के संकट की विकरालता निकट भविष्य में कम नहीं होगी। आंकड़ों के इस मायाजाल से भिन्न भी यह स्पष्ट दिखाई देता है कि गरीबी और बेकारी हमारे गांवों के ऐसे पेबंद हैं जिनको मिटाने का संकल्पित प्रयास होना चाहिये। इस संदर्भ में 'ग्रामीण रोजगार गारंटी बिल' 2004 की उपादेयता और क्रियान्वयन के अवरोधों का मूल्यांकन करना समय की मांग है।

ग्रामीण रोजगार गारंटी अधिनियम की मुख्य बातें

ग्रामीण रोजगार के लिये गारंटी के प्रस्तावित अधिनियम में ग्रामीण क्षेत्र के प्रत्येक परिवार के कम से कम एक वयस्क सदस्य को वैधानिक न्यूनतम मजदूरी पर कम से कम 100 दिन का रोजगार उपलब्ध कराने का प्रावधान किया गया है। इस अधिनियम के प्रमुख बिन्दु निम्न प्रकार हैं :

- यह गारंटी सार्वजनिक कार्य के लिये सामाजिक और मानवीय श्रम से सम्बन्धित होगी;
- रोजगार की मांग करने पर 15 दिन के भीतर रोजगार उपलब्ध कराया जाएगा;
- कार्य–स्थल 5 किलोमीटर के दायरे में होगा। यदि ऐसा नहीं है तो श्रमिक को यात्रा भत्ता और वहां रहने की सुविधा होगी;
- यह गारंटी प्रत्येक ग्रामीण परिवार के 18 वर्ष से अधिक उम्र के कम से कम एक व्यक्ति के लिये होगी;
- गारंटी कम–से–कम 100 दिन के रोजगार की होगी;
- यदि निर्धारित 15 दिवसों में रोजगार उपलब्ध नहीं कराया गया तो दैनिक बेरोजगारी भत्ता देय होगा जो न्यूनतम मजदूरी के एक तिहाई से कम नहीं होगा।
- मजदूरी का भुगतान 7 दिनों में किया जाएगा। यदि इसमें देरी होती है तो उसे मजदूरी भुगतान अधिनियम के अंतर्गत क्षतिपूर्ति पाने का अधिकार होगा।

सुविधाएं एवं उनकी पात्रता

इस प्रस्तावित अधिनियम के अन्तर्गत काम करने वाले श्रमिकों को निम्नांकित सुविधाओं की पात्रता प्रदान की गई हैं :

- कार्य के दौरान घायल होने पर चिकित्सा सुविधा एवं कम से कम वैधानिक न्यूनतम मजदूरी के 50 प्रतिशत तक दैनिक भत्ता मिलेगा।
- यदि किसी श्रमिक की कार्य के समय मृत्यु हो जाती है तो उसके कानूनी वारिस को श्रमिक क्षतिपूर्ति अधिनियम के अनुसार क्षतिपूर्ति मिलेगी।
- कार्यस्थल पर सुरक्षित पीने का पानी, छोटे बच्चों और श्रमिकों के विश्राम के लिए शेड, प्राथमिक चिकित्सा पेटी, जिसमें आकस्मिक चिकित्सा की पर्याप्त सामग्री हो तथा बच्चों को कार्य के दौरान संभालने को बाल गृह की सुविधाएं उपलब्ध करायी जाएगी।
- इसके अतिरिक्त श्रमिक कल्याण योजनाएं जैसे स्वास्थ्य बीमा, दुर्घटना बीमा, गर्भावस्था लाभ एवं सामाजिक सुरक्षा योजनाओं आदि के लिये मजदूरी का 5 प्रतिशत भाग काटकर अंशदान किया जाएगा।

प्रशासनिक व्यवस्था

ग्रामीण रोजगार गारंटी अधिनियम को लागू करने के लिये राष्ट्रीय स्तर पर एक 'केन्द्रीय रोजगार गारंटी' परिषद बनाने का निर्णय लिया गया है जिसमें महिलाओं और दलितों का प्रतिनिधित्व होगा। यह परिषद अधिनियम के सभी पक्षों के क्रियान्वयन हेतु उत्तरदायी होगी। राज्य स्तर भी एक ऐसी ही परिषद होगी जो राज्य सरकार को अधिनियम को लागू करने हेतू आवश्यक परामर्श देगी। जिला स्तर पर जिलाधीश या मुख्य प्रशासनिक अधिकारी पर कार्यक्रम लागू करने का उत्तरदायित्व होगा। खंड ब्लाक स्तर पर कार्यक्रम अधिकारी तथा पंचायत समिति अधिनियम को लागू करेगी।

कार्य योजना का निर्माण

इस प्रस्तावित अधिनियम के अंतर्गत रोजगार उपलब्ध कराने के लिए प्रत्येक राज्य अपना 'रोजगार गारंटी' कार्यक्रम तथा इसे लागू करने के नियम तैयार करेगा। ग्रामीण स्तर पर ग्राम पंचायत, ग्राम सभा की अनुशंसा पर कार्यक्रम के लिये प्रोजेक्ट बनाएगी। वार्षिक आधार पर बनायी गयी ऐसी विकास योजनाओं के खंडों का निर्माण एवं रक्षण भी पंचायत करेगी। ब्लाक स्तर पर कार्यक्रम अधिकारी रोजगार की मांग और उस क्षेत्र में उपलब्ध अवसरों के साथ सामंजस्य बढ़ाने के लिये उत्तरदायित्व पूरा करने के लिये पर्याप्त स्टाफ एवं तकनीकी सहायता भी उपलब्ध कराई जाएगी।

रोजगार पात्रता

अधिनियम के अंतर्गत रोजगार पाने के इच्छुक व्यक्तियों को ग्राम पंचायत में पंजीकरण कराना होगा। पंजीकृत व्यक्तियों को ग्राम पंचायत एक 'जॉब कार्ड' देगी जिस पर श्रमिक का फोटो होगा। राज्य सरकार द्वारा बनाये गये नियमों के अंतर्गत कार्डधारियों को रोजगार उपलब्ध कराया जाएगा।

पारदर्शिता एवं उत्तरदायित्व का निर्धारण

हमारे देश में प्रत्येक शासकीय योजना या कार्यक्रम अपनी कागजी सफलता के लिये अधिक बदनाम है। इस सच्चाई को ध्यान में रखते हुए प्रस्तावित अधिनियम में बेहतर पारदर्शिता और उत्तरदायित्व निर्धारण हेतु निम्नांकित उपाय किये गये हैं :

- जिलाधीश या मुख्य कार्यपालन अधिकार योजना के सम्पूर्ण कोषों के धारक, एवं सभी व्ययों का लेखांकन करने के लिये उत्तरदायी होंगे;
- सभी लेखों और दस्तावेजों को उनकी लागत देकर प्राप्त किया जा सकता है;
- प्रत्येक प्रोजेक्ट का विवरण उसके लेखों के साथ प्रोजेक्ट के स्थल एवं ग्राम पंचायत कार्यालय में विशिष्ट रूप से प्रदर्शित किये जायेंगे;
- प्रत्येक प्रोजेक्ट का विवरण उसके लेखों के साथ प्रोजेक्ट के स्थल एवं ग्राम पंचायत कार्यालय में विशिष्ट रूप से प्रदर्शित किये जायेंगे;
- प्रोजेक्ट के अन्तर्गत निर्मित उत्पादक परिसम्पत्तियों का मूल्यांकन तकनीकी रूप से कुशल व्यक्तियों द्वारा कराया जायेगा;
- प्रत्येक विवाद या शिकायत पर कार्यक्रम अधिकारी सात दिनों के भीतर ध्यान देगा;
- प्रत्येक ग्राम पंचायत कार्यक्रम क्रियान्वयन पर एक वार्षिक प्रतिवेंदन तैयार करेगी जो जनता को उपलब्ध होगा;
- ग्राम सभा, ग्राम पंचायत में किये जाने वाले कार्यों का निरीक्षण एवं निर्देशन सामाजिक अंकेक्षण के माध्यम से करेगी।
- अधिनियम के प्रावधानों के अमल न करने की स्थिति में न्यूनतम 100 रुपये तथा छः माह के कारावास या दोनों की सजा का प्रावधान रखा गया है।

वित्तीय व्यवस्था

अपर्याप्त 'वित्तीय संसाधन' शासकीय योजनाओं की सफलता में सबसे बड़ी बाधा बनते हैं। चूंकि यह सम्पूर्ण विधान महाराष्ट्र में चल रहे रोजगार गारंटी कार्यक्रम पर आधारित है अतः उसी की तर्ज पर इस अधिनियम के क्रियान्वयन हेतु एक अलग कोष बनाना प्रस्तावित है। यह भी संभावना है कि इस हेतु सरकार 'शिक्षा उपकर' की तरह ही आगामी बजट में 'रोजगार–उपकर' लगायेगी। जहां तक वर्तमान समय में वित्तीय आवश्यकताओं का प्रश्न है तो 5 सदस्यीय औसत परिवार के हिसाब से 20 करोड़ ग्रामीण गरीबों के परिवारों में से एक को रोजगार देने पर 4 करोड़ श्रमिकों को रोजगार देना होगा। 2004–05 की कीमतों पर यदि मजदूरी 60 रुपये तथा गैर–मजदूरी लागत 40 रुपये मानी जाए तो 100 दिवसों के रोजगार हेतु प्रति व्यक्ति 10,000 रुपये प्रतिवर्ष व्यय होगा। अतः कुल वार्षिक व्यय 10,000 करोड़ रुपये बैठता है। यह प्रस्ताव किया गया है कि इस वित्तीय भार का 80 प्रतिशत (60 प्रतिशत मजदूरी लागत के लिये और 20 प्रतिशत गैर–मजदूरी लागत के लिये) केन्द्र सरकार वहन करेगी व शेष 20 प्रतिशत राज्यों को वहन करना होगा। यह भी ध्रुव सत्य है कि अधिनियम के लागू होने पर शहरी गरीबों के लिये भी रोजगार की गारंटी की मांग उठेगी तब इस भेद को मिटाने के लिये और अधिक वित्तीय संसाधन लगेंगे जिनकी व्यवस्था सहज नहीं है।

व्यावहारिक कठिनाइयां

रोजगार का प्रश्न उदारीकरण और वैश्वीकरण के चलते भविष्य का एक बड़ा आर्थिक और सामाजिक प्रश्न बनेगा, इसे नकारा नहीं जा सकता। वर्षों से हमारी अर्थव्यवस्था के अनेक झटकों को झेलने वाला कृषि क्षेत्र भी वैश्वीकरण की आंधी में निरन्तर

कमजोर हो रहा है। ऐसी स्थिति में ग्रामीण गरीबों के रोजगार का प्रश्न न केवल चिंतनीय है वरन् उसके संवैधानिक स्वरूप को भी सिद्धांतः नकारा नहीं जा सकता। जहां तक राजनीतिज्ञों का प्रश्न है उनके पास चुनाव जीतने के वादों को पूरा करने के लिये या तो कागजी आंकड़े होते है या फिर आर्थिक– राजनैतिक परिस्थितियों का बहाना। दोनों ही स्थितियों में राजनीतिज्ञ उत्तरदायित्व से इसलिये बच निकलते हैं कि अपनी रोजी–रोटी और स्वार्थों में उलझी जनता 'ड्रांइगरूम विरोध' से आगे नहीं बढ़ पाती है। इन पारस्थितियों में रोजगार की गारंटी के संदर्भ में निम्नलिखित व्यावहारिक कठिनाईयों पर विचार होना अपरिहार्य है तभी एक अच्छी संकल्पना सफल हो सकती है।

वित्तीय कठिनाइयां

केवल ग्रामीण क्षेत्रों में वह भी गरीबों के लिये रोजगार गारंटी का अधिकार देने पर अनुमानित 40,000 करोड़ रुपये वार्षिक व्यय भार वर्तमान बजट प्रवृत्तियों से सहन कर पाना दुष्कर है। वर्ष 2003–04 के केन्द्र सरकार के कुल व्यय 474255 करोड़ की तुलना में 2,630,26 करोड़ रुपये का राजस्व प्राप्ति 40,000 करोड़ रुपये के अतिरिक्त भार को कैसे सहन करेगी? एक ओर वर्ष 2009 तक राजकोषीय घाटा शून्य करने का लक्ष्य है तो दूसरी ओर कर की दरों में, कर दायरा बढ़ने की आशा में कटौती हो रही है केन्द्र तथा राज्य सरकारों की कर आय का आधे से अधिक भाग (केन्द्र सरकार 1,24,555 करोड़ रुपये तथा राज्यों का 82,920 करोड़ रुपये) प्रतिवर्ष केवल ऋणों के ब्याज चुकाने में जाता है। करदाता तथा सरकार के बीच राजस्व उगाही की रस्साकशी के बीच वोट की जो राजनीति है, उसके चलते अधिनियम के सही क्रियान्वयन हेतु वित्तीय व्यवस्था करना एक जटिल समस्या है।

प्रशासनिक कठिनाइयां

लगभग सभी सरकारी योजनाएं अपने खैराती स्वरूप के कारण प्रशासन और राजनेताओं को भ्रष्टाचार का एक बड़ा अवसर प्रदान करती हैं। पंचायतों के माध्यम से जितना सत्ता का विकेन्द्रीकरण नहीं हुआ उससे अधिक भ्रष्टाचार का विकेन्द्रीकरण हुआ है। भयविहीन न्याय व्यवस्था ने प्रशासनिक अमले की स्वार्थ सिद्धि को निर्द्वन्द्व बना दिया। प्रशासन तंत्र राजनीतिज्ञों द्वारा बनाई गई ऐसी योजनाओं की मलाई खाने में इतना सिद्धहस्त है कि वह इनसे जुड़े सभी पक्षों को बड़ी सहजता से बंदरबांट में शामिल कर लेता है। यह अधिनियम भी चूंकि ऐसे ही प्रशासन तंत्र के रहमोकरम पर होगा, इसलिए उद्देश्य और लक्ष्यों की अच्छाई एवं नियम–कानून कागजी खानापूर्ति में पारंगत प्रशासनिक अमल के समक्ष बेमानी न हो जाए, इस हेतु कोई कार्यवाही करना होगी। यह प्रश्न केवल इस अधिनियम का न होकर सभी शासकीय योजनाओं का है और इसलिये इस पर पृथक से विचार होना चाहिये।

राजनैतिक सच्चाई

सभी संकटों के लिये राजनीति को दिन–रात कोसने पर भी यह सच है कि यही राजनीति इतनी शक्तिशाली हो गई है कि जनता की गाढ़ी कमाई की स्पष्ट दिखने वाली लूट को भी आम जनता सहन करने को मजबूर है। योजनाएं कोई भी क्यों न हों, उनके लाभार्थी गरीब और बेरोजगार न होकर राजनेता और प्रशासन तंत्र ही रही है। इसलिये एक ओर इनकी फौज फलती–फूलती है तो दूसरी ओर गरीबी और बेकारी बढ़ती दिखाई देती है। राजनीति में व्याप्त शक्तियां यद्यपि सब कुछ ठीक करने की क्षमता रखती हैं परन्तु उनकी–दिशा इस ओर है ही नहीं। इस सच्चाई के बीच 40,000 करोड़ रुपये प्रतिवर्ष का व्यय ऐसा न हो कि जनता की गाढ़ी कमाई के दुरूपयोग का एक नया मार्ग प्रशस्त करे।

अब यह स्वाभाविक प्रश्न होगा कि सच्चाई की भंवरों के बीच भी यदि आशा को बचाया नहीं गया तो भंवरों से संघर्ष कैसे होगा? आशाएं क्षीण ही क्यों न सही, कुछ तिनके प्रस्तावित रोजगार गारंटी अधिनियम में भी हैं जो परिवर्तन के वाहक हो सकते हैं। इनमें ग्राम पंचायतों की कार्य के संबंध में वार्षिक रिपोर्ट के साथ–साथ प्रत्येक स्तर पर पारदर्शिता प्रमुख है। यदि पंचायतें जिम्मेदार बनें, तो एक जनचेतना उभर सकती है। चुनावों में जनता के बदलते रुख से ऐसी चेतना का संकेत भी मिलता है। पारदर्शिता से भी जागरूकता आती है और यही एकमात्र उपाय है जो सभी प्रकार के सुधारों का मार्ग प्रशस्त कर सकता है। कुछ क्षेत्र यदि इस काम में मॉडल के रूप में विकसित किये जा सकें तो यह भी एक सकारात्मक बात होगी। फिर भी, निराशा की धुंध से आशा का तिनका निर्बल जान पड़ता है। निर्बल के सबल बनने की संभावना के बीच ग्रामीण रोजगार का प्रश्न राष्ट्रीय आकार ले रहा है, और इसे संवैधानिक स्वरूप दिया जा रहा है, यह भी शुभ संकेत समझा जा सकता है। ❑

(लेखक द्वय डा. हरि सिंह गौर विश्वविद्यालय, सागर (म.प्र.) के वाणिज्य विभाग में क्रमशः रीडर और वरिष्ठ व्याख्याता हैं)

लेखकों से

कुरुक्षेत्र के लिए मौलिक, अप्रकाशित लेखों का स्वागत है। रचना दो प्रतियों में टाइप की हुई हो और उसके साथ मौलिकता का प्रमाण–पत्र संलग्न हो। **कुरुक्षेत्र** में साहित्यिक रचनाएं प्रकाशित नहीं की जाती हैं। अस्वीकृत रचना लौटाने के लिए कृपया डाक टिकट लगा और अपना पता लिखा लिफाफा लगाएं। लेख संपादक, **कुरुक्षेत्र** कमरा नं. 655/661, विंग 'ए' गेट नं. 5, निर्माण भवन, ग्रामीण विकास मंत्रालय, नई दिल्ली–110011 के पते पर भेजें।

ग्रामीण बेरोज़गारी : एक सामाजिक समस्या

डा. एस.के. सिंह और शशिबाला

विश्व बैंक की ताजा रिपोर्ट के अनुसार भारतीय अर्थव्यवस्था विश्व की चौथी बड़ी अर्थव्यवस्था हो गई है। दसवीं पंचवर्षीय योजना (2002–2007) में विश्व की आर्थिक विकास दर में 8 प्रतिशत वृद्धि के प्रयास किए जा रहे हैं। राष्ट्रपति ए.पी.जे. अब्दुल कलाम ने तो इसके 10 प्रतिशत वृद्धि दर तक पहुंचने की संभावना व्यक्त की है। भारत के विदेशी मुद्रा भण्डार में रिकार्ड वृद्धि और सकल घरेलू उत्पाद (जी.डी.पी.) में 10.4 प्रतिशत की अभूतपूर्व वृद्धि के बावजूद ग्रामीण क्षेत्रों की बदहाली देश के आर्थिक विकास की दयनीय तस्वीर प्रस्तुत करती है। यद्यपि नियोजन काल के प्रारम्भ से लेकर अब तक ग्रामीण क्षेत्रों की समस्याओं एवं गरीबी निवारण के लिए अनेक प्रयत्न किए गए किंतु ग्रामीण क्षेत्रों में बेरोजगारी की समस्या दिन प्रतिदिन बढ़ती जा रही है।

बेरोजगारी की स्थिति वह होती है जब कोई श्रमिक प्रचलित मजदूरी या उससे कम पर कार्य करने हेतु तत्पर हो किन्तु उसे कार्य करने का अवसर नहीं मिल पा रहा हो। भारत एक अल्पविकसित, किन्तु विकासशील देश है इस कारण यहां बेरोजगारी का स्वरूप औद्योगिक दृष्टि से उन्नत देशों की अपेक्षा भिन्न है। प्रसिद्ध अर्थशास्त्री लार्ड कीन्स के विश्लेषण के अनुसार 'विकसित देशों में बेरोजगारी का मूल कारण प्रभावी मांग की कमी माना जाता है।'

ग्रामीण क्षेत्र के लोगों की आय का मुख्य स्रोत कृषि है परन्तु कृषि मौसमी व्यवसाय है इसलिए कृषि तथा कृषि आधारित उद्योगों में मौसमी बेरोजगारी पाई जाती है। प्रायः देखा जाता है कि मौसमी बेरोजगारी की अवधि पृथक–पृथक राज्यों में भिन्न–भिन्न है। भारत में कृषि में सामान्यतः 7–8 माह ही काम चलता है शेष महीनों में खेती में लगे व्यक्तियों को बेकार बैठना पड़ता है। खेतों की बुवाई–जुताई तथा कटाई के समय खेतिहर मजदूरों की मांग बढ़ जाती है जिसके फलस्वरूप इस समय बेरोजगारी में कमी आ जाती है लेकिन पैदावार होने के बीच बेरोजगारी बढ़ जाती है। एक आकलन के अनुसार उत्तरी भारत में औसत किसान वर्ष के 150 दिन बेकार रहता है।

ग्रामीण बेरोजगारी का दूसरा स्वरूप वर्ष भर अल्प रोजगार या छिपी हुई (अदृश्य) बेरोजगारी है। अल्परोजगार के अंतर्गत श्रमिकों को उनकी क्षमता तथा योग्यता की अपेक्षा काम नहीं मिलता तथा अदृश्य बेरोजगारी के अंतर्गत श्रमिक बाहर से तो कार्य पर लगे प्रतीत होते हैं किंतु वास्तव में उन श्रमिकों की उस कार्य में आवश्यकता नहीं होती। इन श्रमिकों की सीमांत उत्पादकता शून्य अथवा नगण्य होती है। कृषि में इस प्रकार की अदृश्य बेरोजगारी की प्रधानता है।

योजना आयोग ने सन् 2002 तक अर्थव्यवस्था को लगभग पूर्ण रोजगार (सभी के लिए रोजगार) की स्थिति तक लाने का लक्ष्य निर्धारित किया था लेकिन ऐसा हो नहीं पाया। राष्ट्रीय न्यादर्श सर्वेक्षण संगठन (एनएसएसओ) के सर्वेक्षण के अनुसार 1987–88 से 1993–94 के दौरान देश में रोजगार के 4.391 करोड़ अवसर सृजित हुए। इस प्रकार प्रति वर्ष रोजगार के 73 लाख नए अवसरों का सृजन हुआ, किन्तु इसकी भरपाई नहीं की जा सकी। भगवती रिपोर्ट के अनुसार 1971 में देशभर में बेरोजगार व्यक्तियों की कुल संख्या 187 लाख थी, जिनमें से 161 लाख (86 प्रतिशत) बेरोजगार ग्रामीण क्षेत्रों के थे। सन् 1993–94 में बेरोजगारों की संख्या 3 करोड़ 77 लाख हो गयी थी। इनमें से 62 प्रतिशत ग्रामीण क्षेत्रों तथा 38 प्रतिशत शहरी क्षेत्रों से थे तथा 1999–2000 में बेरोजगारों की कुल संख्या बढ़कर 7 करोड़ 32 लाख हो गयी।

आठवीं पंचवर्षीय योजना के दस्तावेज के अनुसार पिछले दो दशकों में रोजगार के अवसरों में 2.2 प्रतिशत प्रति वर्ष की दर से वृद्धि हुई है जबकि श्रमशक्ति में वृद्धि की दर 2.5 प्रतिशत प्रति वर्ष रही है इस कारण बेरोजगारी के आकार में निरंतर वृद्धि हुई है। नौवीं तथा दसवीं पंचवर्षीय योजनाओं में यद्यपि सरकार द्वारा ग्रामीण क्षेत्रों के लिए अनेक रोजगारपरक योजनाएं चलाई गई हैं किन्तु बेरोजगारी की समस्या से अभी तक निजात नहीं मिल सकी है।

ग्रामीण क्षेत्र में बेरोजगारी के कारण

यह एक विडम्बना है कि आज भी भारतीय कृषि मानसून पर निर्भर है। वर्षा जल संरक्षण, नहरों तथा कुओं का निर्माण ग्रामीण क्षेत्रों में काफी कम है क्योंकि कृषि ही ग्रामीण जनसंख्या की आय का मुख्य साधन है। गांवों की 65 प्रतिशत जनसंख्या कृषि पर ही आश्रित है ऐसे में दुर्भाग्यवश यदि प्राकृतिक विपदाएं बाढ़, सूखा आदि पड़ जाए तो ग्रामीण बेरोजगारी और भी बढ़ जाती है। अव्यवस्थित, अविकसित तथा अवैज्ञानिक कृषि ने भी ग्रामीण बेरोजगारी को बढ़ाया है। इसके अलावा ग्रामीण बेरोजगारी में वृद्धि के बहुत से कारण हैं जो निम्नलिखित हैं –

- बेरोजगारी का सबसे प्रमुख कारण देश में जनसंख्या की तीव्र वृद्धि है। सीमित भूमि पर जनसंख्या का दबाव बहुत बढ़ गया है परिणामस्वरूप जीविकोपार्जन हेतु प्रति व्यक्ति भूमि की उपलब्धता सीमित होती जा रही है। चूंकि भारत की जनसंख्या का 70 प्रतिशत भाग गांवों में निवास करता है अतः जनसंख्या वृद्धि का अधिक प्रभाव ग्रामीण क्षेत्रों पर पड़ा है।

- भारत में 'हरित क्रांति' के बावजूद आज भी देश के अधिकतर भागों में कृषि पारंपरिक ढंग से की जाती है। कृषि में यंत्रीकरण, उन्नत बीज–खाद, उर्वरकों आदि का उपयोग भारतीय किसान बहुत कम करते हैं जिससे श्रमशक्ति का दुरुपयोग होता है। आधुनिक तकनीकों के उपयोग से श्रम शक्ति की बचत होती है इसके अतिरिक्त श्रम शक्ति को अन्य कृषि आधारित उद्योगों में लगाया जा सकता है। कृषि आधारित उद्योगों जैसे– दूध, डेयरी, भेड़–बकरी पालन, मुर्गी पालन, शहद उद्योग, रस्सी बनाना, व्यापारिक फसलें उगाना, बागवानी, अचार, जैम, मुरब्बा इत्यादि का सर्वथा अभाव है। वर्ष 2003–04 के खाद्यान्न वर्ष में अनाज और तिलहन उत्पादन में व्यापक वृद्धि होने के कारण हमारे देश की सरकार 'द्वितीय हरित क्रांति' की घोषणा करने के लिए उत्सुक है ऐसे में ग्रामीण क्षेत्रों में बढ़ती बेरोजगारी ग्रामीण अर्थव्यवस्था के विकास पर प्रश्नचिन्ह लगाती है।
- आज भी भारतीय किसान विपणन व्यवस्था के लिए बिचौलियों पर निर्भर है। ग्रामीण क्षेत्रों में परिवहन सुविधाओं का अभाव तथा कृषि मूल्यों एवं बाजार व्यवस्था का ज्ञान न होने के कारण किसानों को कृषि उत्पादों का उचित मूल्य नहीं मिल पाता इससे कृषि उत्पादों का ह्रास होता है तथा उचित मूल्य न मिलने के कारण किसान की श्रम शक्ति यों ही बेकार चली जाती है।
- स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद देश के विकास के लिए पंचवर्षीय योजनाओं को लागू किया गया। चौथी योजना में इस पर विशेष ध्यान दिया गया – 'लघु कृषक विकास एजेन्सी' 'सीमांत कृषक एवं कृषि श्रमिक एजेन्सी' 'सखा प्रवृत्त क्षेत्र कार्यक्रम तथा 'ग्रामीण रोजगार के लिए पुरजोर स्कीम' एवं पांचवीं योजना में 'काम के बदले अनाज कार्यक्रम व न्यूनतम आवश्यकता कार्यक्रम चलाए गए। परंतु ग्रामीण क्षेत्रों को केवल एक चौथाई भाग ही प्राप्त हुआ इससे गांवों में निर्धनता उन्मूलन, रोजगार के अवसरों में वृद्धि, आवश्यक वस्तुओं की कीमतों में स्थिरीकरण तथा घरेलू बाजार की दृष्टि से ग्रामीण अर्थव्यवस्था का समुचित विकास नहीं हो पाया। अतः पंचवर्षीय योजनाओं के उचित कार्यान्वयन न होने से भी ग्रामीण क्षेत्रों का विकास रुक गया है।
- केंद्र एवं राज्य सरकारों द्वारा आठवीं एवं नौवीं पंचवर्षीय योजनाओं में ग्रामीण क्षेत्रों के विकास एवं रोजगार सृजन हेतु अनेक योजनाएं चलायी गयीं, लेकिन ग्रामीण क्षेत्रों में किसानों एवं बेरोजगार युवकों को सरकार द्वारा चलाई जाने वाली योजनाओं की जानकारी न होने के कारण वे उस लाभ से वंचित रह जाते हैं। योजनाओं का कुछ भाग भ्रष्ट प्रशासन तंत्र एवं बिचौलियों के मध्य ही सिमटकर रह जाता है अतः यदि यह कहा जाए कि सरकार द्वारा ग्रामीण विकास योजनाओं का सही कार्यान्वयन न होने से भी बेरोजगारी बढ़ रही है, तो अतिशयोक्ति नहीं होगी।
- वर्तमान समय में सरकार द्वारा ग्रामीण क्षेत्रों में शिक्षा के प्रचार–प्रसार पर व्यापक ध्यान दिया जा रहा है। सर्वशिक्षा अभियान, स्कूल चलो अभियान, साक्षरता अभियान, स्वरोजगार कार्यक्रम, तकनीकी एवं व्यावसायिक प्रशिक्षण आदि योजनाओं से जहां एक ओर शिक्षा का प्रसार हुआ है वहीं दूसरी ओर गांव का पढ़ा–लिखा युवक कृषि कार्यों एवं हस्तशिल्प, दस्तकारी आदि कार्यों को हीन समझता है तथा नौकरी को ही प्राथमिकता देता है फलस्वरूप ग्रामीण क्षेत्रों से शहरों की ओर पलायन करने लगता है।
- ग्रामीण क्षेत्रों में प्राकृतिक संसाधनों का समुचित दोहन न करने के कारण भी ग्रामीण क्षेत्रों में बेरोजगारी व्याप्त है। सैकड़ों एकड़ बंजर जमीन पर कोई कार्य नहीं होता, खेतों में यों ही पुरानी पद्धति से कम लागत एवं गुणवत्ता वाली फसलें उगाई जा रही हैं। पौष्टिक आहार एवं जड़ी–बूटियों का कोई उपयोग नहीं होता तथा मानवीय संसाधन भी कृषि पर अतिरिक्त बोझ बना हुआ है। आज का ग्रामीण परिवेश का व्यक्ति, गांवों की उत्पादित वस्तुओं की अपेक्षा शहरी क्षेत्रों की मंहगी कीमतों वाली वस्तुओं को प्राथमिकता देता है। प्रत्येक गांव में टी.वी., फ्रिज, टेलीफोन, मोटर साइकिल आदि भौतिक वस्तुओं की मांग बढ़ गई है। अतः इससे भी ग्रामीण क्षेत्रों में बेरोजगारी बढ़ी है।
- ग्रामीण क्षेत्रों में व्याप्त कुप्रथाएं जैसे– जाति प्रथा, छुआछूत, बाल–विवाह, स्त्री शिक्षा का अभाव, शराब–जुआ, जादू–टोना आदि भी बेरोजगारी को बढ़ाते हैं। आज भी जाति प्रथा एवं छुआछूत के कारण अनेक व्यक्ति बहुत से कार्यों को हीन एवं तुच्छ समझते हैं तथा आपस में एक दूसरे का सहयोग भी नहीं करते। इसके अलावा बीमारियां एवं कुपोषण भी ग्रामीणों की बेरोजगारी को बढ़ाते हैं। उचित शिक्षा और सुविधाओं के अभाव में वे पौष्टिक आहार एवं दवाएं नहीं ले सकते जिससे उनकी कार्यकुशलता प्रभावित होती है और वे बेरोजगारी एवं विपन्नता की स्थिति में बने रहते हैं।

ग्रामीण बेरोजगारी – एक चुनौती

बेरोजगारी चाहे ग्रामीण हो या शहरी, किसी भी प्रगतिशील राष्ट्र के लिए एक चुनौती है। देश बेरोजगारी के ऐसे महासागर में गिरता जा रहा है जिसमें से निकलने का कोई उपाय हमारे राजनेताओं के पास नहीं है। देश में बेरोजगारी की हालत को देखते हुए ऐसा लगता है कि वह दिन दूर नहीं जब पूरे देश में रोजगार के लिए संघर्ष शुरू हो जाएगा। देश की एक चौथाई आबादी दरिद्रता में रहती है और उसकी अर्थव्यवस्था रोजगार विहीन होती जा रही है। हर साल लाखों लोग डिग्री लेकर बेरोजगारी की भीड़ में शामिल हो जाते हैं और उधर पहले से खाली हाथों को भी काम नहीं मिल रहा है। यदि भूमिहीन गरीबों को नौकरियां नहीं मिलेंगी तो इस अर्थव्यवस्था में क्षेत्रीय टकराव, नक्सली और आतंकवादी हिंसा को कैसे रोका जा सकता है?

तमाम देसी उद्योग धंधे बंद हो गए हैं और जो चल रहे हैं उनके सामने भी संकट मंडरा रहा है। बीकानेरी भुजिया बनाने से लेकर आटा पीसने तक का काम बहुराष्ट्रीय कम्पनियां करने लगी हैं। इनसे सम्बद्ध आज करोड़ों लोगों के सामने रोजी–रोटी का संकट पैदा हो गया है। जब एक ग्रामीण बेरोजगार, रोजगार की तलाश में शहर में आता है तो वहां भी उसे उसके अनुरूप काम नहीं मिल पाता।

हमारे उद्योग और देसी हुनर मानो किसी खड़ी चट्टान की कगार पर खड़े हैं और उन पर मौत का खतरा मंडरा रहा है। भारत गांवों का देश है आबादी का एक बहुत बड़ा हिस्सा कृषि पर ही आश्रित है। हमारे सकल घरेलू उत्पाद में कृषि का 24.7 प्रतिशत, उद्योग का 26.4 प्रतिशत और सेवा क्षेत्र 48.8 प्रतिशत योगदान है। देसी उद्योग–धंधों के लिए कच्चा माल कृषि क्षेत्र से ही प्राप्त होता है किन्तु ये बहुराष्ट्रीय कम्पनियां हमारे कृषि क्षेत्र और उद्योग धंधों पर भी अपना अधिग्रहण कर लेना चाहती हैं। हमारे देश के बहुत से कृषि उत्पादों जैसे– बासमती, हल्दी, गेहूं, जड़ी–बूटियां आदि का अमेरिका पेटेंट करा चुका है इससे ग्रामीण बेरोजगारी और भी बढ़ती जा रही है। विदेशियों द्वारा कृषि क्षेत्र पर एक और कुठाराघात तब हुआ जब कानकुन सम्मेलन में कृषि को सब्सिडी न देने की बात की गई किन्तु भारत ने इसे अस्वीकार कर दिया था, इतना ही नहीं हमारे नेताओं ने भी कोई कोर–कसर नहीं छोड़ी है और कृषि आय पर कर लगाने का प्रस्ताव भी किया जा रहा है।

ग्रामीण बेरोजगारी समाधान हेतु उपाय

भारत एक कृषि सम्पन्न राष्ट्र है। यहां कृषि ही 70 प्रतिशत लोगों की जीविका का मुख्य साधन है। बेरोजगारी ग्रामीण अर्थव्यवस्था के विकास में बाधक है अतः बेरोजगारी का निवारण किया जाना आवश्यक है। भारत में ग्रामीण बेरोजगारी को समाप्त करने के लिए निम्नलिखित उपाए किए जा सकते हैं –

- भूमि की कम उपलब्धता के कारण ग्रामीण क्षेत्रों में सघन खेती एवं मिश्रित खेती को प्रोत्साहन देना आवश्यक है। उत्तम बीज, कृषि यंत्रों का उपयोग, खाद–उर्वरक तथा सिंचाई सुविधाओं के उपयोग से सघन तथा मिश्रित खेती को बढ़ावा दिया जा सकता है तथा खाद्यान्न फसलों का उत्पादन साथ–साथ किया जा सकता है। इससे मौसमी बेरोजगारी को दूर करने के साथ–साथ रोजगार के अवसरों में वृद्धि होगी तथा किसानों को अधिक लाभ भी मिल सकेगा।
- लघु एवं कुटीर उद्योगों के विकास से देश में औद्योगीकरण को बल मिलेगा तथा उद्योगों का विकेन्द्रीकरण होने से अधिक लोगों को रोजगार का अवसर प्राप्त होगा। ग्रामीण क्षेत्रों में कृषि आधारित उद्योगों के अलावा अन्य उद्योगों – जैसे साबुन बनाना, डिटर्जेंट, शैम्पू, चाक बनाना, सिलाई–कढ़ाई, प्रिंटिंग, इलेक्ट्रोनिक उपकरण की जांच एवं सुधार, फर्नीचर, बर्तन बनाना, साइकिल एवं मशीनों के पार्ट्स, वर्कशाप तथा कम्प्यूटर आदि से सम्बन्धित उद्योगों को बढ़ाया जा सकता है जिससे अधिक लोगों को बेरोजगार होने से बचाया जा सकता है।
- अधिकांशतः ग्रामीण क्षेत्रों में आज भी परिवहन सुविधाओं का अभाव है। यद्यपि हमारे देश की सरकार द्वारा इस ओर पर्याप्त ध्यान दिया गया है। अभी हाल में चलाई गई प्रधानमंत्री ग्राम सड़क योजना इस दिशा में ठोस कदम है जिसके अन्तर्गत सरकार द्वारा 2007 तक सभी गांवों को पक्की सड़कों से जोड़ने का प्रावधान है जिससे ग्रामीण किसान अपनी खेती से सम्बन्धित उत्पादों को बाजार तक पहुंचा सके व अपनी वस्तु का उचित मूल्य प्राप्त कर सके।

  सरकार को चाहिए कि वह ग्रामीण लोगों को अपने उत्पादों को बेचने के लिए विपणन की सुविधा उपलब्ध कराये जिससे किसानों को बिचौलियों व मुनाफाखोरों से छुटकारा मिल सके। गांवों में सरकारी क्रय केंद्रों की स्थापना की जाए, जिससे ग्रामीणों को अपनी उपज का उचित मूल्य मिले, साथ ही मुनाफाखोरों, बिचौलियों तथा कालाबाजारी करने वालों के विरुद्ध सरकार को ठोस कदम उठाने चाहिए ताकि किसानों को शोषण से बचाया जा सके।
- ग्रामीण क्षेत्रों के विकास के लिए सरकार अनेक कार्यक्रम चला रही है जिसमें ऋण तथा अनुदान के अलावा विपणन की सुविधाएं भी उपलब्ध हैं। क्षेत्रीय ग्रामीण बैंक, सहकारी बैंक तथा भूमि विकास बैंकों द्वारा भी ग्रामीण क्षेत्रों के किसानों को कम ब्याज पर ऋण सुविधाएं उपलब्ध करायी जा रही हैं कुछ बैंकों में तो फसल बीमा योजना, खेतिहर किसान बीमा योजना तथा किसान क्रेडिट कार्ड जैसी सुविधाएं भी शुरू की गई हैं। पंचवर्षीय योजनाओं द्वारा भी ग्रामीण क्षेत्रों में स्वर्ण जयन्ती ग्राम स्वरोजगार योजना, सम्पूर्ण ग्राम स्वरोजगार योजना, जवाहर ग्राम समृद्धि योजना, स्वजलधारा योजना, अन्त्योदय योजना जैसी अनेक विकास योजनाएं सरकार चला रही है जिनकी जानकारी ग्रामीण किसानों को अवश्य होनी चाहिए इसके लिए सरकारी एवं गैर–सरकारी संस्थाओं द्वारा शिविर एवं पंचायतों के माध्यम से गांवों में प्रशिक्षण दिया जाना चाहिए जिससे ग्रामीण जनता को योजनाओं का पूरा लाभ मिल सके।
- आज आवश्यकता इस बात की है कि प्रत्येक स्कूलों में विशेषकर ग्रामीण क्षेत्रों में छात्रों को सैद्धान्तिक शिक्षा के साथ–साथ तकनीकी एवं व्यावसायिक शिक्षा का भी ज्ञान कराया जाए ताकि कोई भी युवा शिक्षा पूरी करने के बाद स्वावलम्बी बन सके। ग्रामीण क्षेत्रों में व्याप्त सामाजिक कुरीतियों, रूढ़िवादिता तथा अंधविश्वास को भी दूर करना आवश्यक है। महिलाओं को भी शिक्षा की ओर प्रेरित करना चाहिए इस दिशा में सरकार द्वारा निःशुल्क बालिका शिक्षा, सर्वशिक्षा अभियान आदि कार्यक्रम चलाये गए हैं। इसके अतिरिक्त ग्रामीण क्षेत्रों में स्वास्थ्य के प्रति लापरवाह रहते हैं। गंदगी, अज्ञानता तथा कुपोषण का शिकार होने के कारण उनकी कार्यकुशलता प्रभावित होती है। अतः प्रत्येक गांव में लोगों को चिकित्सा सुविधा उपलब्ध कराने हेतु प्राथमिक स्वास्थ्य केन्द्र होना चाहिए तथा साथ ही साथ शिविर लगाकर समय–समय पर स्वास्थ्य की उचित देखभाल, निःशुल्क दवाएं बीमारियों से होने वाली हानियां तथा नशामुक्ति आदि की जानकारी लोगों को दी जानी चाहिए।
- भारत के कई क्षेत्रों में प्रचुर मात्रा में प्राकृतिक संसाधन – अपार जल सम्पदा, वन सम्पदा, खनिज सम्पदा होने के बावजूद उसका उचित दोहन न हो पाने से बेरोजगारी तथा निर्धनता जैसी समस्याएं व्याप्त हैं। प्राकृतिक संसाधन बिना उपयोग के व्यर्थ चले जाते हैं। उत्तरांचल, बिहार, मध्य प्रदेश, छत्तीसगढ़, झारखण्ड आदि इसके उदाहरण हैं। कुछ क्षेत्रों में दोहन के बावजूद उसका लाभ स्थानीय लोगों के बजाए विदेशी

कम्पनियों को हो रहा है। अतः सरकार को चाहिए कि पहाड़ी क्षेत्रों के जल स्त्रोतों से छोटी–छोटी पन बिजली इकाइयां स्थापित करें। बेकार पड़ी वन सम्पदा से दुर्लभ जड़ी–बूटियों तथा पौष्टिक खाद्य पदार्थों के बारे में ग्रामीण लोगों को जानकारी कराएं तथा लोगों को प्रशिक्षित करें जिससे ग्रामवासियों को गांव में ही कम मूल्य पर दवाएं उपलब्ध हो सकें तथा गांवों में ही 'सोलर प्लांट', 'पवन चक्कियों' तथा 'गैस एजेन्सियों' का निर्माण करके सस्ती दरों पर लोगों को ऊर्जा एवं अन्य सुविधाएं उपलब्ध कराई जा सकें।

यह सही है कि वर्तमान में ग्रामीण विकास की कई योजनाएं चलाई जा रही हैं, लेकिन उस क्षेत्र के लोगों के हुनर और जरूरत का ध्यान नहीं रखा जाता है। गांव के बढ़ई, दस्तकार, लोहार, कुम्हार आदि के कौशल की अनदेखी कर दी जाती है उन्हें ऐसे कामों में लगाया जाता है जो उनके लिए नहीं होते हैं। आवश्यकता इस बात की है कि इन लोगों के कौशल और दक्षता को आधुनिक तकनीक द्वारा और अधिक बढ़ाया जाए। गांवों से शहरों की ओर पलायन को रोकने के लिए छोटे काम धंधों, दस्तकारी, कृषि से जुड़े उद्योगों तथा अन्य छोटे लघु एवं कुटीर उद्योगों को पुनर्जीवित किया जाए इसके साथ ही प्रत्येक ग्रामीण को यह सोच बदलनी होगी कि कोई भी कार्य छोटा या तुच्छ नहीं होता यदि प्रत्येक ग्रामवासी सहकारिता की भावना से कार्य करे तो ग्रामीण बेरोजगारी की समस्या पर काबू पाया जा सकता है। अतः यदि उपर्युक्त बातों पर ध्यान दिया जाए तो इसमें कोई शक नहीं है कि सुदृढ़ ग्रामीण अर्थव्यवस्था भारत को एक विकसित राष्ट्र बनने के लिए मजबूत आधार प्रदान कर सकती है।

यह भी गौरतलब है कि जब तक हम अपने देश के मानवीय और प्राकृतिक संसाधनों के उपयोग के साथ–साथ कृषि के विकास की योजनाएं नहीं बनाते हैं तब तक हमारा ग्रामीण विकास सम्भव नहीं है। नई अर्थव्यवस्था से हम अपना विदेशी मुद्रा भण्डार तो बढ़ा सकते हैं लेकिन देसी उद्योग–धंधों को चौपट कर देश की आम जनता को खुशहाल नहीं बना सकते हैं। ❑

(दोनों लेखक क्रमशः एनआईईसी, लखनऊ और सरस्वती देवी नारी ज्ञानस्थली महिला महाविद्यालय में प्रवक्ता हैं)

एकल बाजार का निर्माण

संयुक्त प्रगतिशील गठबंधन सरकार देश में आंतरिक व्यापार संबंधी सभी बाधाओं को दूर करने के और भारतीय अर्थव्यवस्था को वृहत्तर आयाम प्रदान करने के लिए वचनबद्ध है। राज्यों द्वारा **मूल्य विर्धित कर प्रणाली** (वैट) लागू करने और सड़क, रेल विमान सेवा, दूरसंचार तथा ब्राडबैंड **कनैक्टिविटी** के क्षेत्र में किए जा रहे सतत पूंजी निवेश से व्यापार और वाणिज्य के मामले में आंतरिक लेन–देन संबंधी लागतों में और भी कमी आएगी। आवश्यक वस्तु अधिनियम को सरल बनाने और वस्तुओं को उधर लाने–ले जाने पर लगे नियंत्रणों को समाप्त करने संबंधी कारवाई को भी आगे बढाया जाएगा। एक ऐसा **समन्वित खाद्य कानून** बनाने के लिए भी कदम उठाए गए हैं जो पूरे देश पर लागू होगा। **जिन्स के वायदा बाजारों के विकास** तथा कृषि विपणन सम्बंधी कानूनों में सुधार लाने की दिशा में भी पहल की गई है। कर संबंधी कानूनों को एक समान तरीके से लागू करने के लिए एक राष्ट्रीय कर अधिकरण की स्थापना की जाएगी। इससे कर संबंधी विभिन्न कानूनों के बीच संगति हो सकेगी और न्यायालयों में कर संबंधी मुकदमों की संख्या में कमी आएगी। राज्यों को **कृषि उपज विपणन नियंत्रण अधिनियमों** में समुचित संशोधन करने के लिए राजी करके एक एकीकृत आंतरिक बाजार तैयार करने के भी प्रयास किए जा रहे है। ❑

वाणिज्य और उद्योग

- पिछले सात महीनों (अप्रैल–अक्तूबर, 2004) के दौरान भारत के निर्यात में रिकार्ड वृद्धि के साथ निर्यात 4000 करोड़ अमरीकी डालर से भी अधिक। पिछले वर्ष की इसी अवधि की तुलना में निर्यात में 23.73 प्रतिशत की वृद्धि।
- अपने तरह की पहली विस्तृत विदेश व्यापार नीति की घोषणा की गई। इसमें भारत के विदेश व्यापार के चहुंमुखी विकास के लिए एक समन्वित दृष्टिकोण अपनाया गया।
- विश्व व्यापार संगठन के समझौते में भारत के हितों की पूरी सुरक्षा की व्यवस्था।
- भारत में 238 करोड़ अमरीकी डालर का प्रत्यक्ष विदेशी निवेश जो पिछले वर्ष की इसी अवधि की तुलना में दोगुना है।
- घरेलू औद्योगिक गतिविधियों में तेजी का रुख बने रहने की संभावना।
- सकल घरेलू उत्पाद के पहली तिमाही के अनुमानों से समग्र औद्योगिक उत्पादन में 6.8 प्रतिशत वृद्धि दर का संकेत। यह पिछले वर्ष की इसी अवधि की तुलना में लगभग एक प्रतिशत अधिक है।
- इस वर्ष की पहली छमाही के दौरान औद्योगिक उत्पादकता सूचकांक से औद्योगिक विकास में 7.9 प्रतिशत की वृद्धि का संकेत।
- भारत और खाड़ी के छह देशों के संगठन–खाड़ी सहयोग परिषद ने आर्थिक सहयोग के बारे में समझौते की रूपरेखा पर हस्ताक्षर किये।
- यह समझौता खाड़ी देशों के साथ भारत के वाणिज्यिक और आर्थिक संबंधों को बढ़ाने में मील का पत्थर है।

बांस विकास : समस्याएं और संभावनाएं

आर.बी.एल. गर्ग

भारत के सामाजिक–आर्थिक और पर्यावरणीय परिप्रेक्ष्य में बांस की प्रजातियां उगाई जाती हैं। कुल 75 बांस परिवारों के अंतर्गत एक हजार से अधिक बांस प्रजातियां विद्यमान हैं। इनमें से लगभग 20 से अधिक परिवार की 130 प्रजातियां भारत में व्यावसायिक कृषि के रूप में उगाई जाती हैं। बांस उत्पादन की दृष्टि से भारत के जो राज्य श्रेष्ठ हैं उनमें प्रमुख हैं उत्तर पूर्वी राज्य (मिजोरम, त्रिपुरा व असम), पश्चिमी घाट, छत्तीसगढ़, उत्तरांचल, मध्य प्रदेश, हिमाचल प्रदेश व अण्डमान निकोबार द्वीप समूह। अगर हम बांस उत्पादन की दृष्टि से अन्य देशों पर नजर डालें तो पहला स्थान चीन का है जहां 30 से अधिक प्रजातियां उगाई जाती हैं। बांस की सबसे बड़ी विशेषता यह है कि यह किसी भी पेड़ के मुकाबले बहुत तेजी से बढ़ता है।

बांस आधारित उद्योग का महत्व

आदिकाल से ही बांस की मानवीय समाज में महत्वपूर्ण भूमिका रही है। आज भी बांस एशिया, दक्षिणी, अमेरिका और अफ्रीका के उप उष्णकटिबंधीय क्षेत्रों के दो अरब निवासियों की भरण पोषण की आवश्यकताओं को पूरा करता है। बांस मूलतः घास परिवार का पौधा है। चूंकि यह घास प्रजाति में आकार की दृष्टि से सबसे बड़ा, सबसे अधिक तेजी से बढ़ने वाला पौधा है, इसलिए इसे सभी 'घासों का बादशाह' भी कहा गया है। बांस की उपयोगिता निम्न बिंदुओं से समझी जा सकती है।

- **पर्यावरणीय सुरक्षा** : पर्यावरणीय सुरक्षा की दृष्टि से बांस की अदभुत क्षमता है क्योंकि यह न केवल लकड़ी का श्रेष्ठ विकल्प है (जिसके कारण वनों पर दवाब कम रहता है) अपितु इसमें निहित बायोमास्क क्षमता निम्नीकृत भूमि के पुनरोद्धार के भी योग्य है। विस्तृत जड़ों के कारण यह जल व भूमि का संरक्षण भी करते हैं। भूमि स्खलन के नियंत्रण में भी बांस की महत्वपूर्ण भूमिका है। पर्यावरण विशेषज्ञ बांस को कार्बन पृथक्करण एजेन्ट के रूप में भी देखते हैं। उनका मानना है कि पर्यावरण में जो घातक धुंआ व गैस उलीचा जा रहा है उसे बांस वृक्ष अवशोषित कर सकते हैं। बांस वृक्षों में कार्बन ऑक्साइड के अवशोषण करने की क्षमता है। इसके अतिरिक्त बांस से कागज निर्माण होने से हरे–भरे वृक्षों की कटाई को भी रोका जा सकता है।
- **खाद्य के रूप में बांस का उपयोग** : बांस की कुछ प्रजातियों की कोमल टहनियां स्वादिष्ट सब्जी और अचार बनाने के लिए उपयोग की जाती हैं। व्यंजन के रूप में उपयोग करने से पूर्व बांस की कोमल टहनियों को छोटे–छोटे टुकड़ों में काटकर भाप द्वारा पकाया जाता है ताकि उसके उपद्रवकारी अम्ल निकल जायें।
- **बांस के पारम्परिक उपयोग** : बांस के पारम्परिक उत्पादों में मुख्यतः भवन निर्माण, बांस के फर्नीचर, संगीत, उपकरण, मत्स्यफन्द, सजावट सामग्री आदि प्रमुख हैं। देश–विदेश में बरेली आज भी बांस उत्पादों, श्रृंगारदान के शीशे के फ्रेम, अटैची, ज्यामितीय आकृतियों में बनी कुर्सियों, मेजों, स्टूलों आदि के लिए जाना जाता है। लचीलेपन के कारण इसका उपयोग मंच के ढांचे सामाग्री के रूप में भी उपयोग संभव है। लोहे की तुलना में बांस का मूल्य 10 प्रतिशत से भी कम है तथा ढांचे के निर्माण में बांस का उपयोग सुलभ रहता है।

गत वर्ष दिल्ली में अखिल बांस कांग्रेस का आयोजन किया गया था, जिसमें बांस के विलोपन से सुरक्षा के लिए बांस आधारित उद्योगों के विकास में नवीनतम तकनीकों के उपयोग की संभावनाओं को तलाशा गया। इस कांग्रेस में चीन, आस्ट्रेलिया, संयुक्त राज्य अमेरिका, दक्षिणी अमेरिका और जापान सहित 50 से अधिक देशों ने भाग लिया। धीरे–धीरे राष्ट्रीय व अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर सामूहिक प्रयासों के फलस्वरूप बांस के उपयोग में वृद्धि हुई है। एक अनुमान के अनुसार विश्व स्तर पर वार्षिक बांस व्यवसाय 500 अरब रुपये का है, जिसके 2015 तक दोगुना होने की संभावना है। भारत में बांस का वार्षिक व्यापार लगभग 200 अरब रुपये का है, जबकि इसकी बाजार क्षमता कई गुनी है। बांस के विभिन्न व्यावसायिक व गैर व्यावसायिक उद्देश्यों की दृष्टि से भारत में बांस की मांगपूर्ति में भारी अंतर है– (2.7 करोड़ टन मांग की तुलना में मात्र 1.5 करोड़ टन की ही आपूर्ति है।)

बांस विकास की कार्ययोजना

भारत में बांस उद्योग का विकास इसकी संभावनाओं के अनुरूप नहीं हुआ। इसमें कोई संदेह नही कि बांस उद्योग का एकीकृत विकास ग्रामीण गरीबी निवारण, तथा रोजगार सृजन का महत्वपूर्ण माध्यम बन सकता है। इसी दृष्टिकोण से योजना आयोग द्वारा बांस प्रौद्योगिकी तथा व्यापार विकास संबंधी राष्ट्रीय मिशन स्थापित किया था। इस मिशन का मुख्य उद्देश्य एक कार्य योजना को लागू करना था जिसके अंतर्गत रोजगार सृजन, पर्यावरणीय सुरक्षा तथा हस्तकला सहित बांस आधारित औद्योगिक विकास की प्रक्रिया को सुदृढ़ करने की रूपरेखा तैयार की गयी। राष्ट्रीय मिशन के अंतर्गत समन्वित बालविकास कार्यक्रम द्वारा लगभग 86 लाख व्यक्तियों को रोजगार मिलेगा तथा अनुमानतः 50 लाख परिवार स्थायी रूप से गरीबी रेखा से स्वयं को बचा पायेंगे। आंतरिक बांस अर्थव्यवस्था का आकार अनुमानतः 2 हजार करोड़ रुपये है जबकि 15–20 प्रतिशत औसत वार्षिक प्रक्षेपित वृद्धि दर के हिसाब से बाजार की संभावनाएं 4 हजार करोड़ रुपये से अधिक हैं। ❑

(लेखक श्री बालाजी महिला स्नातकोत्तर महाविद्यालय, दौसा (राज.) में प्राचार्य हैं)

भारत के गांव

चौपाल से ई-चौपाल की ओर

हेना नक़वी

केंद्रीय वित्तमंत्री पी. चिदम्बरम् ने वर्ष 2005–06 के आम बजट में 100 करोड़ रुपये की लागत से 'ग्राम ज्ञान केन्द्र' स्थापित करने की घोषणा की है। गांव और शहर के बीच सूचना की खाई को पाटने की दिशा में यह एक महत्वपूर्ण कदम है। इन सूचना केन्द्रों में आधुनिकतम सूचना प्रौद्योगिकी का इस्तेमाल करते हुए गांव वालों की सूचना, शिक्षा और संचार की आवश्यकताओं को पूरा किया जायेगा। आगे चलकर प्रत्येक गांव में एक ज्ञान केन्द्र स्थापित करने का सरकार का इरादा है। हालांकि गांवों को सूचना प्रौद्योगिकी का लाभ पहुंचाने का कार्य कुछ निजी व्यावसायिक कम्पनियों और स्वयंसेवी संगठनों ने पहले ही शुरू कर दिया है। सूचना प्रौद्योगिकी से संबंधित उपकरणों और सेवाओं के लगातार सस्ता होते जाने के कारण अब वे दिन दूर नहीं, जब देश का प्रत्येक गांव सूचना-संपन्न होगा।

भारत के ग्रामीण क्षेत्रों के संप्रेषण की अपनी एक अलग विशिष्टता है, क्योंकि इसपर स्थानीय ग्रामीण परिवेश की छाप अलग से नज़र आती है। स्थानीय ग्रामीण संप्रेषण माध्यम जैसे–लोकगीत, लोकनृत्य, रामलीला आदि ग्रामीण क्षेत्रों के जनसंप्रेषण के महत्वपूर्ण साधन हैं। संप्रेषण सुविधाओं के मामले में आज भी तकरीबन 35 प्रतिशत गांव सड़कों से जुड़े हुए नहीं हैं, टेलीफोन की सुविधा भी बहुत से गांवों में नहीं पहुंच पायी है। यातायात जैसे भौतिक संचार के साधन भी गांवों में सरलता से उपलब्ध नहीं हैं। भारत के विकसित राज्यों में गांवों की स्थिति जरूर कुछ बेहतर है लेकिन अन्य राज्यों के गांवों में स्थिति कमोबेश यही है कि गांव संचार और संप्रेषण के मामले में देश की मुख्य धारा से कटकर अपने ही खोल में जी रहे हैं।

शायद मुख्यधारा से कटाव गांव की बदहाली का एक कारण भी है और परिणाम भी। ग्रामीण स्तर पर आज भी सार्वजनिक संप्रेषण के माध्यमों में चौपाल (गांव का सार्वजनिक चबूतरा) का नाम दिया जा सकता है। चौपाल एक ऐसा सार्वजनिक स्थान होता है, जहां सार्वजनिक से लेकर व्यक्तिगत खबरों तक का आदान-प्रदान होता है, जहां सामुदायिक महत्व के निर्णय लिए जाते हैं, जहां ग्रामीणजन अपने खाली समय में एकत्र होकर एक-दूसरे की कहते-सुनते हैं। ये चौपाल ग्रामीण संप्रेषण की एक महत्वपूर्ण इकाई है। समय के साथ चौपालों की संप्रेषण व्यवस्था में भी बदलाव आए।

सबसे पहले आल इंडिया रेडियो ने ग्रामीण श्रोताओं तक प्रसारण पहुंचाने के लिए चालीस के दशक में सामुदायिक रेडियो सेट ग्रामीणों में वितरित किए। गांवों की चौपालों पर शाम को ग्रामीणजन इकट्ठे होते थे और ग्रामीणों तथा कृषकों के लिए प्रसारित किए जाने वाले विशेष कार्यक्रमों के साथ-साथ वे लोकगीत, नाटक और नौटंकी जैसे प्रसारणों से अपना मनोरंजन भी करते थे। खेती की बातें उनके लिए उपयोगी होती थीं, जिनपर अमल करके उन्होंने कालान्तर में 'हरित क्रांति' को सफल बनाने में अपनी महत्वपूर्ण भूमिका निभाई।

फिर उपग्रह का प्रादुर्भाव हुआ और अमेरिकी अंतरिक्ष एजेंसी-नासा, दूरदर्शन और आकाशवाणी के सम्मिलित प्रयास से अमेरिका से किराए पर लिए गए एक उपग्रह के माध्यम से देश के दूरदराज़ के कुछ चुने हुए गांवों में सेटेलाइट इन्स्ट्रक्शनल टेलीविज़न एक्सपेरिमेंट (साइट) जैसी महत्वाकांक्षी परियोजना सन् 1975 में शुरू की गई। इसके तहत देश के छः राज्यों के 2,400 गांवों को सामुदायिक टेलीविज़न सेट दिए गए, जो सीधे उपग्रह से जुड़े हुए थे।

'साइट' परियोजना की सफलता ने सरकार को और नया कुछ करने को प्रेरित किया। सन् 1982 में इन्सैट श्रृंखला के उपग्रहों का प्रक्षेपण शुरू हुआ और इसी के साथ देश में टेलीविज़न क्रांति ने जन्म लिया। इन्सैट श्रृंखला के उपग्रहों के माध्यम से देश के दूरदराज़ प्रसारण संभव हो सका। लेकिन तकनीक अभी सस्ती नहीं हुई और उपग्रह से लेकर टेलीविज़न सेट खरीदने तक के सभी चरणों में काफी धन की दरकार थी। लेकिन इससे सूचनाओं का प्रवाह पहले के मुकाबले आसान तो हुआ ही।

रेडियो व टी.वी. जैसे इलेक्ट्रॉनिक माध्यमों के प्रसार का असर गांवों की चौपालों पर नज़र आने लगा। समय-समय पर राज्य सरकारों व स्वयंसेवी संस्थाओं ने ग्रामीणजनों के मनोरंजन व ज्ञानवर्द्धन के लिए कई स्थानों पर चौपालों में सामुदियिक रेडियो तथा टी.वी. सेट मुहैया कराए। श्रीमती इंदिरा गांधी ने पिछड़े ग्रामीण क्षेत्रों में सामुदायिक विकास के लिए टी.वी. की भूमिका पर बल दिया था। वर्ष 1985 में पी.सी. जोशी की अध्यक्षता में गठित टी.वी. सॉफ्टवेअर कमेटी की अनुशंसाओं में से एक थी-प्रत्येक गांव के लिए सामुदायिक स्तर पर टी.वी. सेट का प्रावधान तथा स्थानीय टी.वी. कार्यक्रमों के निर्माण में स्थानीय समुदायों की भागीदारी। शायद यही चौपालों को ई-चौपाल अर्थात् इलेक्ट्रॉनिक माध्यमों से सुसज्जित करने की शुरूआत थी ताकि इलेक्ट्रानिक माध्यमों के जरिए ये गांव देश की मुख्य धारा से जुड़ सकें। मगर आज उस प्रयास का स्वरूप बदल चुका है। अब रेडियो-टी.वी. का स्थान

आधुनिकतम इलेक्ट्रॉनिक माध्यम–इंटरनेट ने ले लिया है।

भारत जैसे देश के गांवों में जहां बुनियादी सुविधायें भी नगण्य हैं, ई–चौपाल की कल्पना करना हथेली पर सरसों पर जमाने जैसा था। मगर हथेली पर सरसों जमाकर ही नहीं बल्कि उगाकर भी दिखाया है–औद्योगिक प्रतिष्ठानों, राज्य सरकारों, विभिन्न निजी कंपनियों व स्वयंसेवी संस्थाओं के साझे प्रयास ने–ई–चौपाल जैसी अनूठी शुरूआत के रूप में। इस अनोखे उद्यम की शुरूआत निजी क्षेत्र की एक कम्पनी ने की है। इस कम्पनी ने अनेक उत्पाद कृषि संसाधनों पर आधारित हैं। यह व्यवस्था लगभग 37 विभिन्न कम्पनियों, विकास संस्थाओं व राज्य सरकारों का ऐसा नेटवर्क है, जो इंटरनेट के माध्यम से किसानों को सीधे उपभोक्ताओं से जोड़ता है। ई–चौपाल का तात्पर्य गांव की चौपाल पर सौर–ऊर्जा चलित वी–सैट इंटरनेट सुविधायुक्त कम्प्यूटर की उपलब्धता से है। मगर मात्र इंटरनेट–कम्प्यूटर सुविधा उपलब्ध करा देने से ही कहानी खत्म नहीं होती। कहानी तो दरअसल यहीं से शुरू होती है। ई–चौपाल दरअसल आधुनिकतम संचार सुविधाओं से लैस एक प्रकार की सहकारी समिति है, जिसका उद्देश्य मूलतः किसानों को आधुनिक कृषि तकनीकें अपनाने, फसल की उत्पादकता बढ़ाने, कृषि विविधिकरण आदि से संबंधित जानकारी देने से लेकर उन्हें उनकी फसलों की उचित कीमत दिलाना है।

ई–चौपालों की अपनी एक अलग रचना है, जिसकी सबसे निचली कड़ी है–संचालक/प्रतिनिधि, जो स्थानीय समुदाय का शिक्षित व्यक्ति होता है। यह संचालक पांच–छः गांवों को मिलाकर बनाई गई एक ई–चौपाल का संचालन करता है। यह एक तरह का हाई–टैक विकासकर्मी। जहां कहीं भी–ई चौपाल है, इन संचालकों ने ग्रामीण विकास को नई गति दी है। हर पचास ई–चौपालों के नेटवर्क के संचालन लिए एक संयोजक नियुक्त किया जाता है जो प्रायः भूतपूर्व व्यापारी, मंडी या कंपनी के उत्पादों का व्यापारी होता है। यह संयोजक कम्पनी व ई–चौपालों के बीच की कड़ी है। इस तरह से यह अनेक प्रकार की इकाईयों के लाभ व्यवस्था की सबसे निचली इकाई अर्थात् कृषकों/ग्रामीणजनों को पहुंचाना है। इन लाभों की सूची में सबसे पहले है–किसानों को जानकारी देना। ई–चौपाल संचालक इंटरनेट से प्राप्त सूचना के आधार पर कृषकों को कृषि के उन्नत तरीकों, उपयुक्त फसलों, वास्तविक बाज़ार मूल्य आदि की जानकारी देता है। अब तक किसानों को उनकी मेहनत का वास्तविक मूल्य जानकारी की कमी व मध्यस्थ के हस्तक्षेप के कारण नहीं मिल पाता था, लेकिन ई–चौपालों के तहत कम्पनी के विक्रय केन्द्र भी बाजार मूल्य के अनुसार। इससे उनके लिए बाज़ार के नये अवसर खुले हैं और विक्रेता (किसान) की मोलभाव करने और अपने इच्छित मूल्य पर बिक्री करने की क्षमता भी बढ़ी है। इससे उनके शोषण पर भी काफी हद तक अंकुश लगा है। यही नहीं, खरीद केन्द्रों पर कृषक सदस्य कम्पनियों से सीधे–सीधे उत्पाद खरीद भी सकते हैं। यह भी दो–तरफा फायदे का सौदा है क्योंकि यहां किसी मध्यस्थ की भूमिका नहीं है। बड़े बाज़ार की उपलब्धता व प्रत्यक्ष खरीद–फरोख्त जैसे लाभों के आधार पर कम्पनियां तेजी से ग्रामीण क्षेत्रों की ओर बढ़ रही हैं। इन कम्पनियों के उत्पादों में साबुन–तेल, आटा–चावल जैसे उत्पादों से लेकर उपकरण मरम्मत व बीमा जैसी सेवाएं तक शामिल हैं। इस नयी व्यवस्था ने एक तरह से समस्त ग्रामीण भारत को एक छत के नीचे लाकर खड़ा कर दिया है।

कृषि और बाज़ार की सुविधाओं के अतिरिक्त ई–चौपाल ग्रामीण विकास के प्रति भी समर्पित है। इसके माध्यम से अनेक स्वयंसेवी संस्थाएं पशु नस्ल सुधारीकरण, जल संग्रहण तकनीकों, स्वयं सहायता समूहों जैसे मुद्दों पर काम कर रही हैं। शिक्षा और स्वास्थ्य जैसे मुद्दों पर सुविधाएं जल्दी ही ई–चौपालों के माध्यम से उपलब्ध कराई जायेंगी। खेती–किसानी, विकास के अतिरिक्त एक आम आदमी के मतलब की चीज़ें जेसे ऑन–लाइन समाचारपत्र, फिल्में भी इस व्यवस्था का हिस्सा हैं। आज की तारीख में उत्तर प्रदेश, मध्य प्रदेश, कर्नाटक, महाराष्ट्र व आन्ध्र प्रदेश राज्यों में कुल 5050 ई–चौपालों की स्थापना हो चुकी है जिनके तहत कुल 29500 गांव व लगभग तीस लाख कृषक हैं।

प्रत्येक ई–चौपाल की स्थापना पर लगभग तीन लाख रुपये का खर्च आता है। मगर यह एक कल्याणकारी कार्य नहीं, कम्पनियों की मार्केटिंग रणनीति है, जिसे कम्पनियों ने अपने लाभ के लिए स्थापित किया है। लेकिन अप्रत्यक्ष रूप से इससे कम्पनियों के लाभ के साथ–साथ त्वरित गति से कृषि विकास और ग्रामीण विकास भी हो रहा है।

आने वाले दिनों में तकनीक और उपकरणों के सस्ता होने से सामान्य ग्रामीण अपने बल पर ही कंप्यूटर, इंटरनेट कनेक्शन और वी–सैट उपकरण लगा सकेंगे। ठीक वैसे ही जैसे सामुदायिक रेडियों और टेलीविज़न के बजाय अब अधिकतर ग्रामीण घरों में अपने रेडियों और टेलीविज़न सेट हैं। सरकार या किसी एजेंसी के बजाय आत्मनिर्भर संचार सेवा ग्रामीण जनों की अपनी सूचना क्रांति होगी। निर्धन और साधनहीन ग्रामीणजन भी अब स्वयंसहायता समूहों के माध्यम से अपने सामुदायिक सूचना केन्द्र स्थापित कर सकते हैं।

उपकरण और तकनीक सस्ता करने की दिशा में प्रयास शुरू भी हो चुके हैं। सामान्य आवश्यकताएं पूरी करने वाला कंप्यूटर अब दस हज़ार रुपये में उपलब्ध होगा। सरकार ने निजी कम्पनियों के सहयोग से सस्ती दर का कंप्यूटर इस वर्ष जून तक उपलब्ध कराने का वायदा किया है। कम्प्यूटर साफ्टवेयर की प्रख्यात कम्पनी 'माइक्रोसॉफ्ट' ने हिन्दी में कंप्यूटर ऑपरेटिंग सिस्टम विकसित कर लिया है। क्षेत्रीय भाषाओं में ऑपरेटिंग सिस्टम शुरू करना अब कुछ समय की ही बात है। उपग्रह से सीधे इंटरनेट सुविधा प्राप्त करना जल्दी ही संभव हो जायेगा। लगभग तीन हज़ार रुपये का टेलीविज़न यानी आठ हज़ार रुपये में ग्रामीणजन सूचना हाई–वे से जुड़ सकेंगे। उन्हें शिक्षा, व्यापार, कृषि, स्वास्थ्य और मनोरंजन सभी कुछ अपनी चौपाल और झोपड़ी में उपलब्ध हो सकने का सपना अब साकार होने की कगार पर है। अब भारत में ग्रामीण विकास अनुदान या ऋण माफी के सहारे नहीं, कृषकों/ग्रामीणजनों के हाई–टेक सशक्तिकरण के रूप में होगा। ❑

(लेखिका गोरखपुर में पीटीआई, की संवाददाता हैं)

सशक्त न्यायालय और मानवाधिकारों का संरक्षण

डा. प्रमोद कुमार अग्रवाल

मानवाधिकारों से सम्बन्धित 10 दिसम्बर, 1948 के सर्वभौमिक घोषणा पत्र की प्रस्तावना में जो उद्देश्य उद्धत किया गया है, वही उद्देश्य वस्तुतः न्यायालयों की स्थापना का भी है अर्थात मानवीय अधिकारों की न्यायपूर्ण शासन द्वारा रक्षा की जाये ताकि किसी व्यक्ति को अन्याय और अत्याचार के विरुद्ध अंतिम विकल्प के रूप में विद्रोह की शरण लेने के लिए विवश न होना पड़े।

वस्तुतः न्यायपालिका का उद्देश्य भी नागरिकों के अधिकारों को परिभाषित तथा उनकी रक्षा करना है। इसलिए न्यायालयों को समाज का सुरक्षा का बल्ब भी कहा जाता है। जो समाज में सशस्त्र विद्रोह को टालते हैं। उपचारी उपायों से रहित अधिकारों का कोई अर्थ नहीं है। अधिकार वही है जो शासन की शक्ति या क्षमता द्वारा क्रियान्वित किया जा सके। जिन अधिकारों का कार्यान्वयन सुनिश्चित न किया जा सके, वे केवल नैतिक अथवा धार्मिक दिशा–निर्देश मात्र हैं। न्यायालय राज्य में स्थित वह तंत्र है जो अधिकारों के पालन को सुनिश्चित करता है। मनुष्य एवं समाज के विकास के लिए भी मानवाधिकारों का संरक्षण आवश्यक है क्योंकि इससे मानव–प्रतिभा का पूर्ण प्रकटीकरण होता है। अंततः इस प्रक्रिया से विश्व में व्यवस्था, शांति तथा समृद्धि स्थापित होती है। स्पष्ट है कि मानवाधिकारों के संरक्षण तथा संवर्द्धन के लिए यह अपरिहार्य सत्य है कि राज्य में स्थित न्याय प्रणाली सशक्त हो सकती है जब उसके पास आवश्यक इच्छाशक्ति तथा मूलभूत सुविधाएं तथा अवसर प्राप्त हों।

हमारे देश की संवैधानिक संसदीय शासन प्रणाली में संविधान की सर्वोच्चता, संसद की सम्प्रभुता एवं न्यायपालिका की स्वतंत्रता के सिद्धान्त को अंगीकार किया गया है।

इसमें कोई संदेह नहीं कि हमारे देश की न्यायपालिका ने अपने कई निर्णयों से कीर्तिमान स्थापित किए हैं, संविधान के लक्ष्यों एवं आदर्शों को कहीं व्यापक बनाया है, बंधुआ मजदूरी पर रोक, बालश्रम पर प्रतिबन्ध व अनेक जनहित याचिकाओं के सम्बन्धों में दिए जा रहे निर्णय न्यायपालिका के भारतीय समाज के प्रति संवेदनशील होने के प्रमाण हैं। कई न्यायिक निर्णयों में संसद द्वारा पारित विधियों, बनाये गए प्रगतिशील कानूनों के मामलों में इस अन्तर्निहित सर्वव्यापी एवं सर्वग्राह्य न्याय के उद्देश्य का लोप भी हुआ है तथा न्याय के नाम पर व न्यायिक स्वतंत्रता की आड़ में कभी–कभी प्रगति और विकास के मार्ग में रुकावटें भी निर्मित हुई हैं।

आजकल न्यायपालिका पर जनता की अत्याधिक आस्था केन्द्रित हो गयी है। जनता समझती है कि इस भ्रष्ट तंत्र में न्यायपालिका ही अन्याय, अत्याचार तथा मानव अधिकारों के हनन के विरुद्ध खड़ी होने में सक्षम है तथा वह ही उसके अधिकारों की रक्षा कर सकती है। प्रजातंत्र में न्यायपालिका ही जनता के अधिकारों तथा मानव अधिकारों की प्रहरी है। भारत जैसे संघात्मक राष्ट्र के लिए भी स्वतंत्र न्यायपालिका का अस्तित्व अपरिहार्य है। न्यायपालिका ही दो या दो से अधिक राज्यों अथवा राज्य एवं केन्द्र के बीच उत्पन्न विवादों को निबटाती है। इसके अतिरिक्त संविधान की व्याख्या न्यायपालिका करती है जो कि हमारी व्यवस्था का नियामक है।

न्यायपालिका का सशक्तिकरण इस प्रकार किया जा सकता है–

न्यायाधीशों की गुणवत्ता में सुधार तथा उपयुक्त संख्या में नियुक्ति

अमेरिका के महान न्यायाधीश कार्डोजो के अनुसार 'न्यायाधीश के व्यक्तित्व के अतिरिक्त न्याय की कोई अन्य गारंटी नहीं है'। इस हेतु न्यायपालिका के प्रत्येक स्तर को प्रभावी, निष्पक्ष तथा दक्ष बनाने के लिए सभी स्तरों पर सम्यक् प्रयास होना आवश्यक है कि न्यायिक अधिकारियों को न्यायिक स्वतंत्रता प्रदान की जाये जिससे वे कार्यकारणी या विधानमंडल से स्वतंत्र होकर न्याय प्रशासित करें। भारतीय संविधान में ऐसी व्यवस्था है तथा न्यायपालिका की स्वेच्छाचारिता के विरुद्ध संविधान में 'चैक एवं बैलेंस' व्यवस्था है। स्वतंत्र तथा निष्पक्ष न्यायपालिका की स्थापना से राजनैतिक प्रक्रिया द्वारा संचालित सत्ता को नियन्त्रित, सीमित तथा मर्यादित किया जा सकता है। कहा जाता है कि भारत के उच्चतम न्यायालय ने अपने जन्म के बाद यह भलीभांति प्रदर्शित कर दिया है कि वह नागरिक अधिकारों तथा समाज के हितों पर अतिक्रमण के विरुद्ध शक्तिशाली ढंग से खड़ा है। जनता ने भी सर्वोच्च न्यायालय का प्रायः पूर्ण समर्थन किया है। वस्तुतः जनता आजकल राजनीतिज्ञों की अपेक्षा सर्वोच्च न्यायालय की ओर अधिक ताक रही है। यह आवश्यक है कि भारत का सर्वोच्च न्यायालय वास्तव में सांविधानिक प्रश्नों या 'बिन्दुओं' पर निर्णय देने का अवकाश ही उपलब्ध नही हो पाता है। एक अनुमान के अनुसार उच्चतम न्यायालय में 160 ऐसे संविधानिक मामले लम्बित हैं जिनके निबटान से अन्य उच्च न्यायालयों में लम्बित अनेक मामले स्वयं ही निष्पादित हो जायेंगे।

सांविधानिक पीठ के गठन में अधिक न्यायाधीशों की आवश्यकता होती है यदि इस पीठ का गठन हो जाए तो अन्य मुकदमे और लम्बित हो जायेंगे। संसार में अन्य सर्वोच्च न्यायालयों की भांति सर्वोच्च न्यायालय में एक संविधान पीठ हो जो केवल संविधानिक मामलों की सुनवाई करे तथा इसके लिए न्यायाधीश पृथक रूप से निर्धारित हों। इसके लिए यदि उच्चतम न्यायालय में दस अतिरिक्त न्यायाधीशों की नियुक्ति हो, तो उपयुक्त होगा।

इसी प्रकार उच्च न्यायालयों में न्यायाधीशों की संख्या कम है। जो संख्या है भी, वह भी पूरी तरह से भरी नही जाती है सभी समय 20 या 25 प्रतिशत खाली पद रहते हैं। उसका एक उपाय यह भी है कि बीस प्रतिशत उच्च न्यायालयों के अधिक पद सृजित हों। उच्च न्यायलय में न्यायाधीशों की नियुक्ति की एक कठिन प्रक्रिया है तथा 1993 में उच्चतम न्यायालय द्वारा एस.पी. गुप्ता मामले में दिये निर्णय के अनुसार संचालित होती है। इस प्रक्रिया में न्यायपालिका को वरीयता प्राप्त है तथा कार्यपालिका तो वस्तुतः डाकखाने की भांति काम करती है। अतः इस प्रक्रिया में मुख्य केन्द्र बिन्दु प्रत्येक उच्च न्यायालय के मुख्य न्यायाधीशगण हैं। वे ही अपने उच्च न्यायालय में न्यायाधीशों की नियुक्ति के प्रस्तावों की कड़ी शुरू कर सकते हैं। यदि वे न करें तो अन्य सदस्य हाथ पर हाथ रख कर ही बैठे रहेंगे। उच्च न्यायालय के मुख्य न्यायाधीशों का यह पद एक गौरवान्वित पद है तथा कार्यपालिका के किसी भी प्रकार के प्रभाव से बाहर है और होना भी उचित है। पर यदि मुख्य न्यायाधीश स्वयं ही सक्रिय न हुए, तो उन्हें सक्रिय बनाना एक दुरूह कार्य है। ये सुझाव भी आये हैं कि सेवानिवृत्त न्यायाधीशों की उच्च न्यायालय में नियुक्ति की जाये, कार्यरत न्यायाधीशों, की विभिन्न पंचाटों या जांच आयोगों में नियुक्ति न की जाये, पर दोनों प्रस्तावों पर कार्यवाही सम्भव नहीं हो पाती है। तीन वर्षों के पश्चात् प्रत्येक उच्च न्यायालय में निर्धारित संख्या का पुनरावलोकन होता है, पर इस प्रक्रिया में जिन उच्च न्यायालयों का मुकद्दमा-निष्पादन राष्ट्रीय औसत से कम है, वे संख्या वृद्धि के दायरे में आते हैं। अतः जो उच्च न्यायालय पीछे हैं, वे पीछे ही रहेंगे। इसमें जनता का क्या दोष? ऐसा निर्णय हो कि एक बार अपवादस्वरूप पिछड़े उच्च न्यायालयों में न्यायाधीशों की संख्या में वृद्धि की जाये।

उच्च न्यायालयों को प्रभावकारी बनाना अति आवश्यक है अन्यथा उच्चतम न्यायालय तथा अधीनस्थ या जिला न्यायालय भी प्रभावित हो जायेंगे क्योंकि अधीनस्थ न्यायालयों से अपील में जाने वाले सभी महत्वपूर्ण मुकद्दमे या मामलें उच्च न्यायालय में अटक जायेंगे। दूसरी ओर उच्चतम न्यायालय के निर्णयों का परिपालन भी ठीक उच्च न्यायालयों के माध्यमों से होता है। संविधान पुनर्विलोकन समिति ने यह सिफारिश की कि उच्च न्यायालय के न्यायाधीशों के दुराचरण को प्रथम दृष्ट्या भारत के मुख्य न्यायाधीश तथा उच्चत्तम न्यायालय के दो सर्वाधिक वरिष्ठ न्यायाधीशों की समिति देखे एवं उनकी रपट उच्चत्तम न्यायालय के सात न्यायाधीशों के पास जाये और उनकी सिफारिश पर कठोरता से अमल किया जाये। यह भी कहा जाता है कि उच्च न्यायालय तथा उच्चतम न्यायालय के न्यायाधीशों की सेवाओं में और सुधार किया जाये ताकि और योग्य अधिवक्तागण उच्च न्यायालय पदों को ग्रहण करने के लिए आगे आयें।

जहां तक निचली अदालत का संबंध है, वहां पर पहले से ही प्रायः चौदह हजार न्यायाधीश नियुक्त हैं। पूर्व में इन न्यायाधीशों की सेवा शर्तें भारतीय प्रशासनिक सेवा शर्तों से खराब थीं। इससे इन सेवाओं के लिए अनेक श्रेष्ठ अभ्यर्थी नहीं गये। सर्वोच्च न्यायालय के निर्देशानुसार इन न्यायाधीशों को भारतीय प्रशासनिक सेवा के वेतनमान दिये जा चुके हैं तथा यह मामला उच्चतम न्यायालय में आगे सुनवाई के लिए लम्बित है। बाद में उच्चतम न्यायालय में उन्हें भारतीय प्रशासनिक सेवा से भी बेहतर वेतनमान देने का निर्देश दिया है। (सर्वभारतीय न्यायाधीश संघ बनाम भारत सरकार, 25 नवम्बर, 2002) प्रायः सभी राज्यों में यह निर्देश लागू कर दिया है। यह आशा की जाती है कि जिला न्यायालयों में भी श्रेष्ठ तथा उत्तम कोटि के अभ्यर्थी इन सेवाओं में प्रवेश करेंगे अब न्यायिक सेवा में प्रवेश के लिए आवश्यक दो या तीन वर्ष का अनुभव भी समाप्त कर दिया गया है ताकि बाजार से प्रतिभा-संपन्न व्यक्तियों को तुरंत इन सेवाओं में आकर्षित किया जा सके।

जहां तक अधीनस्थ न्यायालयों में संख्या-वृद्धि का प्रश्न है, इसके लिए राज्य सरकारों ने इसका कड़ा विरोध दर्ज किया है, क्योंकि उच्चत्तम न्यायालय के आदेशानुसार न्यायालयों में प्रत्येक 10 लाख के ऊपर पचास प्रतिशत नियुक्त करने से राज्यों पर प्रायः चौदह हजार करोड़ से अधिक खर्च का भार पड़ेगा। न्यायाधीशों के लिए भवन तथा आवास निर्माण तथा सहयोगी कर्मचारियों की नियुक्ति के लिए राजस्व पर अत्यधिक बोझ पड़ेगा। अतः यह सिद्धांत ही शायद निश्चित हो कि मुकद्दमों के दाखिल होने तथा लम्बित संख्या के आधार पर न्यायाधीशों की संख्या स्थिर हो तथा वर्तमान में लम्बित मुकदमे पांच वर्षों में समाप्त हो जायें ताकि पांच वर्ष बाद उन न्यायाधीशों को मुख्यधारा में सम्मिलित करने में कोई समस्या न हो। एक गणना के अनुसार, इस प्रकार देश को कुल 1500 अतिरिक्त न्यायाधीशों की आवश्यकता होगी। इस पर राज्य सरकारों को आपत्ति नहीं होनी चाहिए। केन्द्र सरकार ने पहले ही त्वरित न्यायालयों की स्थापना करके यह सिद्ध कर दिया है कि वह देश में मानवाधिकारों के हनन के प्रति सचेत है। इन न्यायालयों में लम्बित सत्र मुकदमों की प्राथमिकता पर सुनवाई होती है। इन मामलों में अवकाश प्राप्त न्यायाधीशों को भी लिया गया है जिनका सेवा-इतिहास उत्तम था। इन अदालतों ने अभी तक उत्तम कार्य किया है। विचाराधीन कैदियों ने भी राहत की सांस ली है। इससे उत्तम मानवाधिकारों की रक्षा का क्या उदाहरण हो सकता है? गम्भीर आपराधिक मामलों के अपराधी समाज के भी शत्रु हैं तथा उनको दण्ड मिलने या विचाराधीन कैदियों के छूटने से मानवाधिकारों की संरक्षा हो रही है।

न्यायाधीशों के लिए प्रशिक्षण

जहां हम न्यायाधीशों की संख्या बढ़ाने की बात करें, वहीं यह आवश्यक है कि वर्तमान न्यायाधीशों की कार्य क्षमता, योग्यता तथा दक्षता में वृद्धि की जाये ताकि उनके पास पड़े मामलों का शीघ्र तथा गुणतापरक निस्तारण हो। यदि जिला न्यायालय के न्यायाधीश पूर्ण तौर से सर्वोच्च न्यायालय, उच्च न्यायालय के निर्णयों तथा सभी विधेयकों से अनभिज्ञ हों तो उनके निर्णयों के विरुद्ध अपीलें भी कम होंगी।

यदि अपीलें हुईं भी, तो उनके निस्तारण में उच्च न्यायालय को कम समय लगेगा। इसलिए उच्चतम न्यायालय ने प्रत्येक न्यायिक अधिकारी के आवास पर एक छोटा–मोटा पुस्तकालय रखने के लिए निर्देश दिया है। राष्ट्रीय न्यायिक अकादमी, भोपाल का 5 सितम्बर, 2002 का महामहिम राष्ट्रपति द्वारा उद्घाटन भी हो गया है। सात–आठ राज्यों में राज्य स्तरीय प्रशिक्षण संस्थान भी है। आशा है कि अन्य राज्यों मे न्यायिक प्रशिक्षण संस्थान शीघ्र स्थापित होंगे अथवा न्यायिक अधिकारियों की समय–समय पर प्रशिक्षण की उत्तम व्यवस्था होगी ताकि न्याय की रेलगाड़ी न्याय–पथ पर सुगमता तथा तीव्रगति से बढ़ती रहे।

न्यायालयों को अधिक वित्तीय स्वायत्तता

बिना वित्तीय स्वायत्तता के भारतीय न्यायपालिका की स्वतंत्रता तथा कुशलता की बात करना वैसे ही है जैसे श्रोताओं की अनुपस्थिति में भाषण देना। आज भारतीय न्यायपालिका आभूषणों के बिना सुशील, सुन्दर तथा सुसज्जित महिला है। भारतीय न्यायपालिका को आर्थिक स्वायत्तता तथा आत्मनिर्भरता की आवश्यकता को न्यायाधिपतियों तथा विधिवेत्ताओं द्वारा विभिन्न मंचों और प्रसंगों में उठाया जाता है। भारत के प्रत्येक मुख्य न्यायमूर्ति द्वारा यह बिंदु उठाया जाता है। यह कहा जाता है कि उच्च न्यायालय के मुख्य न्यायमूर्ति को चतुर्थ श्रेणी के कर्मचारी बढ़ाने का अधिकार नहीं है। वित्तीय संसाधनों के लिए उच्च न्यायालय के अधिकारी को प्रदेश के सचिवालय में याचक की भांति चक्कर लगाने पड़ते हैं। अधीनस्थ न्यायालयों की स्थिति अति चिन्ताजनक है। यद्यपि न्यायधीशों को आवास,वाहन आदि की सुविधाएं प्राप्त हो गयी हैं, पर लिखने के लिए कागज, उचित टंकण, उचित स्टेशनरी आदि का अभाव है। कभी–कभी उचित आशुलिपिकों की संख्या के अभाव में लंबे समय तक निर्णय लिखने के लिए पड़े रहते हैं। केन्द्रीय सरकार ने राज्य सरकारों से यह अनुरोध किया है कि 'कर्नाटक मॉडल' पर उच्च न्यायालयों को वित्तीय स्वायत्तता प्रदान की जाये ताकि उच्च न्यायालय निर्धारित बजट के भीतर कुछ भी निर्णय ले सकें और उन्हें वित्त–विभाग या विधि–विभाग के अनुमोदन की प्रतीक्षा न करनी पड़े। उन्हें उच्च न्यायालय के भवन की रख–रखाव की पूर्ण स्वतंत्रता हो तथा उनके प्रशासनिक नियंत्रण में एक अभियान्त्रिक संगठन या सैल हो जो उच्च न्यायालय के मुख्य न्यायमूर्ति के नियंत्रण पर कार्य करे। उच्चतम न्यायालय को तो प्रथम श्रेणी के भी कुछ पद सृजित करने का अधिकार है। पर यह देखा जाता है कि राज्य के विधानमण्डल की 'पब्लिक एकाउन्ट्स कमेटी' के सामने मुख्य न्यायाधीश वित्तीय जबावदेही के लिए नही आना चाहते हैं क्योंकि सरकार भी उनके सामने पक्षकार है। बिना जवाबदेही के स्वायत्तता असंभव है। उसका भी मध्य मार्ग निकाला जा रहा है। शायद न्यायालय के महापंजीयक के उपस्थित होने से समस्या का समाधान निकल आये। वैसे कर्नाटक सहित कई राज्यों ने उच्च न्यायालयों को काफी वित्तीय स्वायत्तता उपलब्ध करायी है तथा यह प्रक्रिया चालू है। पर अभी भी उच्चतम न्यायालय के स्तर की वित्तीय स्वायत्तता से उच्च न्यायालय काफी दूर हैं।

न्यायालयों में आधुनिक उपकरणों का प्रावधान तथा कम्प्यूटरीकरण

उच्च न्यायालय को पहले ही आधुनिक कार्यालय उपकरण जैसे टैलेक्स, फैक्स, इलेक्ट्रानिक टाइपराइटर आदि प्रदान किये गये हैं। विभिन्न उच्च न्यायालयों और राज्य सरकारों ने सूचित किया है कि वे अधीनस्थ न्यायालयों को चरणवद्ध तरीके से इलेक्ट्रानिक टाइपराइटर/फोटोकापी मशीन आदि प्रदान कर रहे हैं। "परियोजना न्यायालय" के अधीन देश में न्यायपालिका को कंप्यूटीकरण के माध्यम से आधुनिक और सुचारू बनाने के लिए नेशनल इन्फार्मेटिक्स सेंटर ने उच्चतम न्यायालय और सभी 18 उच्च न्यायालयों में कंप्यूटर लगाये हैं। इसके अतिरिक्त एन.आई.सी. ने देश में 430 जिला न्यायालयों के कंप्यूटीकरण का काम शुरू किया है। अब तक लगभग 253 से अधिक जिला न्यायालयों को कंप्यूटर हार्डवेयर प्रदान कर दिये गये हैं। उच्चतम न्यायालय सहित प्रायः सभी उच्च न्यायालयों में आम जनता की सुविधा के लिए कंप्यूटरीकृत पूछताछ केन्द्र स्थापित कर चुके हैं। उच्चतम न्यायालय सहित चार–पांच उच्च न्यायालयों की प्रत्येक दिन की कार्य–सूची अब इंटरनेट पर है तथा कोई भी वादी उसे देख सकता है। उच्चतम न्यायपालिका तो ऐसा पूछताछ केन्द्र है कि व्यक्ति फोन करके अपने मुकद्दमे की यथास्थिति जान सकता है। उच्चतम न्यायालय में "इलेक्ट्रानिक कोर्टों" की स्थापना हो रही है जिससे प्रत्येक मुकदमे का संचालन कंप्यूटर पर होगा तथा न्यायालय में एक पर्दा लगा होगा जिस पर अधिवक्तागण के सभी तर्क–वितर्क प्रतिबिंबित होंगे। वह दिन दूर नही जब घर में बैठे लोग न्यायालय में अपना मुकद्दमा या मुकद्दमे से संबंधित कागजात कम्प्यूटर के माध्यम से भेज सकेंगे तथा न्यायालय के निर्णय तथा दिन प्रतिदिन के आदेश इंटरनेट पर उपलब्ध होंगे। इस प्रकार न्यायालय सीधे जनता के संपर्क में आ जायेंगे, जिस प्रकार की क्रान्ति रेलवे आरक्षण में हुई है। कंप्यूटर द्वारा एक ही भांति के मुकदमों को एक साथ लगाने से बड़ी क्रांति आयी है।

न्यायपालिका के लिए अब संरचनात्मक सुविधाओं के विकास से सम्बन्धित एक केन्द्रीय तौर से प्रायोजित योजना न्यायविभाग द्वारा 1993–94 से कार्यान्वित की जा रही है। इस योजना में न्यायालय भवनों और उच्च न्यायालयों और अधीनस्थ न्यायालयों के न्यायाधीशों/न्यायिक अधिकारियों के लिए आवासीय क्वार्टरों का निर्माण शामिल है। इस योजना का एक मुख्य मानदंड यह है कि राज्य सरकारों को केन्द्रीय सरकार द्वारा जारी राशि के समकक्ष राज्य के समान हिस्से के साथ आगे आना चाहिए।

अतः न्यायपालिका को अधिक वित्तीय स्वायत्तता प्रदान करने हेतु सभी पक्ष जागरूक तथा सक्रिय हैं।

विशेष न्यायालयों की स्थापना

सरकार और न्यायपालिका दोनों ने मामलों को शीघ्र निपटाने के लिए विशेष प्राधिकरणों जैसे केन्द्रीय प्रशासनिक प्राधिकरण, राज्य प्रशासनिक प्राधिकरण, आयकर अपीलीय प्राधिकरण, श्रम न्यायालय, उपभोक्ता न्यायालय इत्यादि की स्थापना की है। भांति–भांति के विशेष न्यायालय आवश्यकतानुसार गठित किए जा रहे हैं। सम्पूर्ण देश में लगभग 75 विशेष दण्डाधिकारी हैं जो यातायात–उल्लंघन जैसे छोटे–छोटे मामलों का शीघ्र निपटारा करते हैं। किराया न्यायाधिकरणों का गठन किया

गया है। विश्वविद्यालय के शैक्षिक और गैर–शैक्षिक कर्मचारियों या अधिकारियों तक केन्द्रीय प्रशासनिक न्यायाधिकरणों के अधिकार क्षेत्र का विस्तार प्रभावित है। इससे नियमित न्यायालयों पर काफी बोझ कम हुआ है। विशेष न्यायालयों का गठन एक स्थापित तथा मान्य अवधारणा है क्योंकि इन न्यायालयों में उस विषय के विशेषज्ञ भी रहते हैं तथा सभी मिलकर उन विशिष्ट वादों का शीघ्र निबटान करने में समर्थ होते हैं। पर जब तक ग्रामीण मुकद्दमों के निबटान के लिए ग्राम न्यायालयों की स्थापना नहीं होती, जिला–न्यायालयों पर बोझ वास्तव में कम नहीं होगा तथा वह केवल बाहरी सजावट रूप से ही कम होगा। दण्ड प्रक्रिया संहिता संबंधी अपने 154 वें प्रतिवेदन में विधि आयोग ने सिफारिश की है कि राज्यों की अपनी स्थानीय आवश्यकताओं और परिस्थितियों के अनुकूल न्याय पंचायतों के संबंध में विधान अधिनियमित करना चाहिए। आंध्र प्रदेश मंडल न्याय पंचायत विधेयक, 1985 को न्याय पंचायतों की संरचना, शक्तियों और अधिकारिता के संबंध में एक आदर्श के रूप में अपनाया जाना चाहिए।

पंच फैसला, मध्यस्थता और न्यायालय से बाहर समझौते के मामलों में निम्नलिखित मंच उपलब्ध हैं:

- वैकल्पिक विवाद निराकरण अन्तर्राष्ट्रीय केन्द्र (आई.सी.ए.डी.आर.),
- लोक अदालतों और गरीबों को निःशुल्क कानूनी सहायता,

पंच–फैसला और सुलह समझौता अधिनियम, 1996 के अंतर्गत पंचाट और सुलह समझौता। इसके अतिरिक्त दीवानी प्रक्रिया संहिता में धारा 89 के प्रवेश के बाद प्रत्येक मामले का अनिवार्य रूप से पंचाट तथा सुलह समझौता की एक्स–रे मशीन से गुजरना पड़ेगा।

केन्द्रीय सरकार ने आपराधिक न्याय प्रणाली को चुस्त–दुरुस्त बनाने के उपायों के सुझाव हेतु कर्नाटक/केरल उच्च न्यायालयों के पूर्व में मुख्य न्यायाधीश रह चुके न्यायाधीश श्री वी.एस. मालीमेथ की अध्यक्षता में जनवरी 2001 में एक समिति का गठन किया। मालीमेथ समिति ने सरकार को अपना रपट दे दी है जो कि सरकारों के विचारार्थ है। इस पर अविलम्ब कार्यवाही अपेक्षित है।

विधि व्यवसाय का सुदृढ़ीकरण

विधिक पेशे की गुणवत्ता न्यायिक प्रणाली की गुणवत्ता का निर्धारण करती है। सुदृढ़ विधिक शिक्षा, सुदृढ़ विधि व्यवसाय का आधार है। अतः विधि व्यवसाय की दक्षता तथा गुणवत्ता के सुधार हेतु विधि में सुधार परमावश्यक है।

विधि शिक्षा के गिरते स्तर पर हैदराबाद सम्मेलन में गहरी चिंता और व्यापक सहमति थी। उपर्युक्त सुधारों का विधि मंत्री द्वारा स्वागत किया गया और उनका यह विचार था कि विधि शिक्षा के सुधार की सफल रणनीति में अन्य बातों के साथ–साथ निम्नलिखित तत्वों को ध्यान में रखा जाना चाहिए:

- बार काउन्सिल ऑफ इंडिया द्वारा अधिक प्रभावी भूमिका;
- उच्च पेशेवर योग्यता और ईमानदारी के शिक्षकों सहित अभिवर्द्धित अवसंरचना युक्त विधि कॉलेजों की पर्याप्त संख्या;
- 10+2 के पश्चात् विधि पाठयक्रम की पंचवर्षीय प्रणाली;
- केवल पूर्णकालिक विधि कालेज;
- अधिवक्ता अधिनियम, 1961 के अधीन और उसके द्वारा विधि कॉलेजों की अवसंरचना के संबंध में मानकों का कड़ा अनुपालन;
- प्रत्येक राज्य में मॉडल के रूप में नेशनल लॉ स्कूल विश्वविद्यालय जैसी संस्था की शुरुआत;
- बार काउंसिल आफ इंडिया की विधि शिक्षा समिति को इसकी सिफारिशों के कार्यान्वयन और प्रतिनिधित्व के संबंध अधिक शक्ति प्रदान करना
- श्रेष्ठ प्रतिभाओं को आकर्षित करने के लिए विधि कॉलेजों की सामान्य प्रवेश परीक्षा की शुरुआत,
- लेक्चर मेथड, केस मेथड, ट्यूटोरियल्स, प्राब्लम मेथड के अलावा मूट कोटर्स, मॉक ट्रायल्स आदि को अनिवार्य बनाया जाना चाहिए,

इसके अतिक्ति स्थानीय परिस्थिति के अनुसार कई अन्य उपाय भी न्यायालयों के सशक्तिकरण के लिए हो सकते हैं। न्यायपालिका क्षेत्र में बुद्धिजीवियों का अभाव नहीं है तथा वे भिन्न परिवेश के अनुसार और उपयुक्त सुझाव दे सकते हैं। पर इतना निश्चित है कि मानवाधिकारों की रक्षा हेतु न्यायालयों की सशक्तिकरण प्रक्रिया को तीव्र गति प्रदान करना अत्यावश्यक है। ❑

(लेखक हिन्दी के सुप्रतिष्ठित साहित्यकार हैं और पश्चिम बंगाल सरकार में जेलविभाग के प्रधान सचिव हैं)

सार्वजनिक प्रणालियों में सुधार

एक महत्वपूर्ण वायदा जो संयुक्त प्रगतिशील गठबंधन सरकार ने किया है, वह सरकारी और सार्वजनिक प्रणालियों में सुधार लाना है। संयुक्त प्रगतिशील गठबंधन सरकार ने सभी राज्यों और सभी संघ शासित क्षेत्रों के मुख्यमंत्रियों सहित उच्च न्यायालयों तथा उच्चतम न्यायालय के न्यायाधीशों से देश में **प्रशासनिक, विधायी और न्यायिक सुधारों** की आवश्यकता पर बल देने के लिए सम्पर्क किया है। केन्द्रीय मंत्रिमंडल सचिव ने सिविल सेवाओं की गुणवत्ता में सुधार लाने और सरकार को और अधिक पारदर्शी, जवाबदेह और कारगर बनाने के लिए प्रयास आरंभ कर दिए हैं। प्रशासन और प्रशासनिक के लिए एक **आदर्श सुशासन संहिता** तैयार की जा रही है। सरकार एक प्रशासनिक आयोग का गठन करेगी जोकि लोक प्रशासनिक प्रणाली को नया स्वरूप प्रदान करेगी जोकि लोक प्रशासनिक प्रणाली को नया स्वरूप प्रदान करने संबंधी रूपरेखा तैयार करेगा।

काष्ठकला उद्योग : स्वरोजगार को बढ़ावा

डा. नितिन कुमार

प्रायः यह कहा जाता है कि आधुनिक युग केवल बड़े उद्योग का ही युग है और इसमें लघु या कुटीर उद्योगों को कोई स्थान नहीं दिया जा सकता किन्तु अगर देखा जाय तो यह किसी भी दशा में कम नहीं है। लघु उद्योगों का राष्ट्र की अर्थव्यवस्था में उतना ही योगदान होता है जितना कि बड़े उद्योगों का, विशेषकर भारत जैसे विकासशील राष्ट्र में तो इन उद्योगों की भूमिका अत्यंत महत्वपूर्ण है। ब्रिटेन, अमेरिका एवं जापान जैसे राष्ट्रों में भी बड़े उद्योगों के साथ–साथ छोटे उद्योगों को भी विकास का पर्याप्त अवसर दिया जाता है। हमारे देश में स्वतंत्रता प्राप्ति के समय बड़े उद्योगों की तरह लघु एवं कुटीर उद्योगों का अभाव था। लेकिन आज ये उद्योग रोजगार, निर्यात उत्पादन तथा निर्माण के क्षेत्र में महत्वपूर्ण भूमिका निभा रहे हैं। वर्ष 1980 की समाप्ति तक जहां कुल 8.05 लाख इकाइयां लघु उद्योगों में लगी थीं और जिनमें 21,635 करोड़ रुपये लगे थे तथा 7 मिलियन लोगों को रोजगार उपलब्ध था, वहीं वर्ष 2000–01 की समाप्ति तक इन इकाइयों की संख्या तकरीबन 34 लाख तक पहुंच गई जिसमें 6,45,496 करोड़ रुपये का उत्पादन हुआ और 18.6 मिलियन लोगों को रोजगार मिला।

भारत गावों का देश है तथा तीन चौथाई से भी अधिक आबादी गांव में निवास करती है। आबादी का 70 प्रतिशत से अधिक भाग कृषि पर आधारित है। कृषि कार्य पूरी तरह रोजगार प्रदत्त उद्योग नहीं है क्योंकि कृषि पूरे वर्ष न चलकर लगभग 6 माह या उससे कुछ अधिक ही चल पाते हैं और बाकी समय मानव शक्ति खाली रहती है। अतः यदि व्यक्तियों को लघु एवं कुटीर उद्योग में लगाया जाये तो कृषि पर जनसंख्या का भार कम हो जाएगा। और लोगों के रोजगार में वृद्धि होगी। इन उद्योगों में प्रचुर मात्रा में पूंजी विनियोजित करने की आवश्यकता नहीं होती है। नगीना जनपद का काष्ठकला उद्योग भी एक लघु एवं स्वरोजगार प्रदान करने वाला उद्योग है तथा यहां के शिल्पी अपनी शिल्प कला के लिए संपूर्ण विश्व में मशहूर हैं। प्रारंभिक हस्तशिल्प के अंतर्गत नगीना का हस्तशिल्प एवं दस्तकारी उद्योग आबनूस, शीशम तथा अन्य किसी प्रकार की लकड़ी पर नक्काशी, तारकशी व अन्य कलात्मक कार्य के लिए जाना जाता है। यहां पर निर्मित काष्ठ की वस्तुएं कलात्मक दृष्टि से अत्यंत आकर्षक व शोभनीय होती हैं। यहां निर्मित काष्ठ उत्पादों में काष्ठ ज्वैलरी, चूड़ियां बाक्स, एशट्रे, शमादान, चक्र, फूलदान, कलमदान, तरह–तरह के जानवरों के चित्र आदि प्रमुख हैं। अकेले नगीना के काष्ठकला उद्यमियों से सरकार को प्रतिवर्ष लगभग 25 करोड़ रुपये विदेशी आय की प्राप्ति होती है। यहां पर तैयार किये गये बेशकीमती और शानदार उत्पाद सालारजंग संग्रहालय, हैदराबाद, राष्ट्रपति भवन, देश विदेश के अनेक संग्रहालयों की शोभा बढ़ा रहे हैं। यहां की आबादी लगभग एक लाख है तथा लगभग 800 छोटी–बड़ी काष्ठ कला उद्योग की इकाइयां यहां स्थित हैं। इस उद्योग के हुनरमंद कारीगरों में मुस्लिमों की संख्या अधिक है तथा पिछले कई दशकों से उनके पूरे परिवार इसी धंधे में लगे हुए हैं। उनकी रोजी रोटी का एक मात्र साधन काष्ठ कला ही बना हुआ है।

स्वतंत्रता के पूर्व से ही नगीना की यह हस्त शिल्प कला सम्पूर्ण विश्व में अपनी धाक जमाये हुए है। ब्रिटेन की महारानी एलिजाबेथ ने वर्ष 1937 में नगीना के प्रसिद्ध हस्तशिल्प व्यवसायी मौहमद अब्दुल्ला को "विक्टोरिया अवार्ड" से सम्मानित किया और साथ ही उन्हें "खान" की उपाधि से भी नवाजा गया था। इसके अतिरिक्त यहां के अन्य व्यावसायियों को भी समय–समय पर विभिन्न राष्ट्रीय स्तर के पुरस्कार मिलते रहे हैं जिनमें बशीर अहमद को राष्ट्रपति पुरस्कार (1976), शब्बीर हुसैन को उत्तर प्रदेश पुरस्कार (1980), अब्दुल सलाम को राष्ट्रपति पुरस्कार (1982), और अब्दुल रशीद को राष्ट्रपति पुरस्कार (1984) प्रमुख है। आज नगीना के कई शिल्पी अपना माल सीधे निर्यात करने में सक्षम हैं। जो छोटे उत्पादक हैं वे या तो यहीं के बड़े उत्पादकों को अपना माल बेच देते हैं या नगीना के समीप किसी बड़े शहर जैसे मुरादाबाद, सहारनपुर, में जाकर अपना माल निर्यात कर देते हैं। एक अनुमान के मुताबिक इस समय इस उद्योग से लगभग 15 से 20 हजार व्यक्ति प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से अपनी आजीविका चला रहे हैं। आज जबकि हर उद्योग में चाहे वह छोटा हो या बड़ा काफी पूंजी की आवश्यकता पड़ती है और जोखिम भी सहना पड़ता है। यह उद्योग बहुत कम पूंजी में व जोखिम रहित स्वरोजगार को बढ़ावा देता है।

काष्ठ की कला की अधिकतर इकाइयां 50,000–1,00,000 तक के निवेश वाली हैं। 5 से 10 लाख के निवेश वाले कारखानों की संख्या बेहद कम तथा इससे अधिक के निवेश की इकाइयों की संख्या तो नगण्य ही है। इतनी पूंजी की भी एक साथ आवश्यकता नहीं पड़ती बल्कि आर्डर प्राप्त होने पर ही संबंधित कच्चे माल का क्रय किया जाता है। माल अक्सर उधार भी मिल जाता है तथा आर्डर पूरा होने के पश्चात भुगतान होने पर उधार चुका दिया जाता है। नगीना के काष्ठ कला उद्योग का 90 प्रतिशत

हिस्सा निर्यात किया जाता है जिससे भारत में विदेशी मुद्रा की प्राप्ति को भी बढ़ावा मिलता है।

सरकारी प्रोत्साहन

काष्ठ कला उद्योग की समृद्धि के लिए सरकार की तरफ से भी समय–समय पर विभिन्न स्रोतों द्वारा सहायता दी गई है। उत्तर प्रदेश शासन की ओर से इस उद्योग को प्रोत्साहित एवं विकसित करने हेतु जिला उद्योग केंद्र द्वारा समय–समय पर प्रशिक्षण का आयोजन किया जाता है। इसके अतिरिक्त शासन अक्सर काष्ठ कला उद्योग से संबंधित अपनी नीतियों में अनुकुल संशोधन करता रहता है ताकि यह उद्योग हमेशा विकास की ओर अग्रसर रहे। अन्य व्यापक प्रयास भी किये जाते है जिसके चलते नगीना का काष्ठ कला उद्योग दिन दूनी और रात चौगुनी प्रगति कर रहा है।

यहां के काष्ठ कला व्यवसायियों द्वारा नगीना काष्ठ कला विकास समिति की स्थापना की गई है जिसका मुख्य उददेश्य इस क्षेत्र में कार्यरत विभिन्न व्यक्तियों के बीच परस्पर सद्भाव, प्रेम एवं भाई–चारे का विस्तार करने के साथ–साथ व्यापारिक क्षेत्र में भी सुगमता एवं अनुचित दमनात्मक प्रतिस्पर्धा को रोकना है। यह समिति एक माह में अपनी बैठक आयोजित करती है और इस क्षेत्र में हो रहे परिवर्तनों एवं बदलाव पर चर्चा करती है तथा प्रत्येक व्यापारी को एकजुट रखने का कार्य करती है। इस समिति द्वारा अपने संयुक्त प्रयास से गीली लकड़ी की समस्या का समाधान करने हेतु लगभग 20 लाख रुपये की लागत से एक सीजनिंग प्लांट लगाया गया है जिससे लकड़ी के जल्दी सूखने में आसानी होती है एवं उत्पादन की गुणवत्ता में भी समुचित सुधार होता है। राष्ट्रीयकृत बैंकों द्वारा भी काष्ठ कला उत्पादकों को समुचित सुविधाएं प्रदान की जाती हैं। बड़े उत्पादकों ने बैंकों में नकद साख खाते खोल रखे हैं ताकि जरूरत पड़ने पर अतिरिक्त धन को भी आहरित किया जा सके। भारतीय रिजर्व बैंक द्वारा लघु इकाइयों को बैंक ऋण प्रवाह सुगम बनाने के उद्देश्य से एक लाख रुपये तक ऋण के लिए समानान्तर सुरक्षा की शर्त हटा दी गई है।

विकास हेतु सुझाव

यद्यपि काष्ठ कला उद्योग के विकास एवं प्रसार की सारी संभावनाए मौजूद हैं फिर भी कुछ ऐसी बाते हैं जिन्हें अपनाकर इस उद्योग को और चमकाया जा सकता है। हालांकि यह उद्योग वर्तमान में विकसित रूप धारण कर चुका है तथा हजारों लोगों की आजीविका का प्रमुख साधन है। फिर भी यदि कुछ बिन्दुओं पर गौर किया जाये तो यह उद्योग और भी विकसित रूप धारण कर सकता है:

- विद्युत की कमी इस उद्योग की प्रगति में आने वाली सबसे बड़ा बाधा है। विद्युत की कमी से उत्पादन कम होता है जिससे व्यापारी मिलते आर्डर कम हैं। अतः उन स्थानों में जहां इस तरह के लघु कुटीर उद्योग स्थापित हैं, विद्युत की समुचित व्यवस्था की जानी चाहिए।
- इस उद्योग में मुख्य कार्य लकड़ी का होता है और अगर लकड़ी बहुतायत में न हो या घटिया किस्म की हो तो बाहर से लानी पड़ती है और कम मात्रा में क्रय करने के कारण उंची कीमत चुकानी पड़ती है। अतः काष्ठ कला के उद्यमियों को सरकार द्वारा समुचित मात्रा में एवं रियायती मूल्य पर लकड़ी की उपलब्धता सुनिश्चित करानी चाहिए।
- काष्ठ कला के उत्पादक अथवा कारीगर अधिकतर अशिक्षित होते हैं। उनके पास तो उनका हुनर ही होता है जिससे वे दो जून की रोटी कमाते हैं अतः उन्हें विदेशों को वस्तु निर्यात करने की पूरी कार्यविधि की जानकारी नही होती और वे एजेंटों के माध्यम से ही निर्यात प्रक्रिया को सम्पन्न करते हैं। एजेंट ऐसे व्यापारियों का शोषण करते हैं तथा मनमाना कमीशन वसूल करते है। अतः ऐसे स्थानों में जहां निर्यात के लिए अपार संभावनाएं मौजूद हों, शासन स्तर से एक निर्यात गृह की स्थापना की जानी चाहिए। यह स्थापना उत्पादन करने वाले छोटे कस्बों के आस–पास किसी बड़े शहर में भी व्यावसायियों की सुविधानुसार की जा सकती है।
- काष्ठ कला उद्योग में तब तक सफलता हासिल नहीं की जा सकती जब तक उत्पादन करने वाले कारीगरों के समुचित प्रशिक्षण की व्यवस्था न हो। प्रशिक्षण के उपरान्त ही उत्पादन में नए–नए तरीकों एवं डिजायनों का समावेश होता है। अतः ये आवश्यक है कि लघु सेवा संस्थानों के द्वारा समय–समय पर विभिन्न प्रशिक्षण कार्यक्रमों का आयोजन किया जाये।
- जनता की मांग, रुचि, फैशन में नित परिवर्तन होते रहते हैं। लेकिन इस उद्योग में लगे व्यक्तियों को ये सूचनाएं समय पर नही मिल पाती हैं और वे उत्पादन की दौड़ में पिछड़ जाते हैं। जिसके फलस्वरूप उनके मुनाफे में कमी आ जाती है। इनका उत्पादन समय एवं राष्ट्र की मांग के मुताबिक हो, उसके लिए परामर्श केंद्रों की स्थापना की जाने की आवश्यकता है ताकि यह उद्योग उन्नति की राह पर अग्रसर हो सके।

इसके अतिरिक्त काष्ठ कला उद्योग के विकास के लिए स्थानीय, जिला, राज्य स्तर पर प्रदर्शनियों का अयोजन, सर्वश्रेष्ठ कलात्मक कृति के निमार्ण के लिए किसी हुनरमंद कलाकार को पुरस्कार का वितरण करने की योजना बनायी जानी चाहिए। भारत जैसे विशाल देश में जहां गरीबी व बेरोजगारी प्रचुर मात्रा में विद्यमान है यह काष्ठ कला उद्योग अपने भीतर हजारों व्यक्तियों को स्वरोजगार उपलब्ध कराने वाला उद्योग बन सकती है। अर्थव्यवस्था को सुदृढ़ बनाने में इस जैसे और अन्य भी लघु एवं कुटीर उद्योगों को महत्व और भी अधिक हो गया है। वर्तमान सरकार द्वारा अपनाई जा रही औद्योगिक नीति को परिप्रेक्ष्य में रखकर लघु एवं कुटीर उद्योगों को प्राथमिकता देना हमारी मूलभूत आवश्यकता बन गयी है। इससे बेरोजगारी व गरीबी पर काफी हद तक अंकुश लगेगा तथा साथ ही साथ लघु एवं कुटीर उद्योगों के विकास से भारत की अनेक समस्यायें स्वतः ही दूर हो जायेंगी। ❑

(लेखक कृष्ण गोपाल महाविद्यालय बिजनौर के वाणिज्य विभाग से संबंद्ध हैं)

मशरूम खेती : कृषि का आधुनिक आयाम

जीवन एस. रजक

मशरूम जिन्हें सामान्य भाषा में छत्रक कहा जाता है, कुछ उच्च कवकों के फलन पिंड हैं। इनका भोजन के रूप में उपयोग मानव द्वारा आदिकाल से ही किया जा रहा है। मिस्र के निवासी इन्हें देवताओं का भोजन मानते थे तथा प्राचीनतम ग्रीक व रोमन साहित्य में भी इनके संदर्भ मिलते हैं। प्राचीन काल में इसका उपयोग केवल स्वाद व सुवास के लिए किया जाता था तथा इन्हें केवल प्राकृतिक वासों से ही एकत्रित किया जाता था। व्यापारिक रूप से इनकी खेती की तकनीकें 18वीं शताब्दी के प्रारंभ में सर्वप्रथम फ्रांस में विकसित की गईं। वर्तमान समय में मशरूमों की लगभग 105 जातियां भोजन के रूप में विश्व के विभिन्न भागों में उपयोग की जाती हैं।

खाने योग्य मशरूमों को उनके आवास के आधार पर पांच समूहों में विभक्त किया गया है :

1. ताजे पादप अवशेषों में पाये जाने वाली जातियां। जैसे–लेन्टिनस, कापरीनस, औरीकुलेरिया, फोलीओटा आदि।
2. केवल अल्प कम्पोस्ट पादप अवशेषों में पायी जाने वाली जातियां। जैसे–स्ट्रोफेरिया, वोल्वेरियेला आदि।
3. पूर्णतः कम्पोस्ट पादप अवशेषों में पायी जाने वाली जातियां–ऐगैरिकस।
4. मिट्टी में उगने वाली जातियां जैसे–लेपीओटा, लेपिस्टा, मोर्शेला आदि।
5. कवक मूल में पाये जाने वाली जातियां जैसे–वोलिटस, अमेनिटा, लेक्टैरियस आदि।

मशरूमों का पोषणिक मान

भारत में कुपोषण एक गंभीर समस्या है। विकसित देशों में प्राणी प्रोटीन की प्रति व्यक्ति औसत खपत लगभग 31 किश्त प्रतिवर्ष है जबकि भारत में यह केवल 4 किश्त प्रति व्यक्ति प्रतिवर्ष है। हमारे देश में प्राणी प्रोटीन की उपलब्धता एवं उपयोग अपेक्षाकृत कम होने के कारण वनस्पति ही प्रोटीन का मुख्य स्रोत है। मशरूम वनस्पति प्रोटीन के मुख्य स्रोत है। प्रयोगों द्वारा यह सिद्ध हो चुका हैं मीटर क्षेत्रफल की क्यारी से प्रतिवर्ष 63 किश्त तक मशरूम प्राप्त किये जा सकते हैं। अन्य किसी प्रोटीन स्रोत का इतना अधिक उत्पादन संभव नही है। अधिकांश मशरूमों की वर्ष में पांच फसलें ली जा सकती हैं।

विभिन्न मशरूमों में प्रोटीन की मात्रा उनके शुष्क भार का 21 से 30 प्रतिशत तक होती है। यह मात्रा अनाज, दालों फलों तथा सब्जियों में उपस्थित कुल प्रोटीन की मात्रा से कहीं अधिक है। इनमें पाये जाने वाले प्रोटीन में सभी आवश्यक अमीनों अम्ल किसी अन्य प्रोटीन स्रोत की अपेक्षा कहीं अधिक मात्रा में पाये जाते हैं। विशेष रूप से लाइसीन नामक अमीनों अम्ल की पर्याप्त मात्रा पायी जाती है। इसके अलावा मशरूमों में खनिज तत्व जैसे कैल्शियम, सोडियम, पोटेशियम, फास्फोरस आदि की पर्याप्त होती है। इसके अतिरिक्त इनमें विटामिन बी.सी.डी. आदि के भी होते हैं जो पकाने, सुखाने, हिमीकरण अथवा डिब्बाबंदी पर विकृत नहीं होते है। मशरूमों में वसा 0.35–0.65 प्रतिशत होता है। अतः ये मधुमेह व हृदय रोगियों के लिए उत्तम भोजन है।

कुछ खाद्य मशरूम और उनकी वार्षिक पैदावार

मशरूम की जातियां	सामान्य नाम	पैदावार (टन में)
1. ऐगैरिकस बाइस्पोरस	सफेद बटन मशरूम अथवा यूरोपियन मशरूम अथवा उष्ण कटिबंधीय मशरूम	87.00
2. लेन्टिनस इडोडेस	शिताकें	170,000
3. वोल्वेरियेला–वोल्वेसिया	पेडीस्ट्रा मशरूम	49,000
4. ल्यूरोटस ओस्टेरेटस	ओस्टर मशरूम	32000
5. फोलिओटा नामेको	नामेको	17000
6. ट्रेमेला फ्यूजीमोर्मिस	ट्रेमेला	10,000
7. ओरिकुलेरिया पोलिट्राईका	ज्वेस ईयर	10,000
8. ट्यूबर मेलेनो स्पर्मम	ट्रफल	2,000

मशरूम की खेती

मशरूम में क्लोरोफिल का अभाव होता है अतः ये कार्बनडाइआक्साइड से अपना कार्बनिक भोजन स्वयं बनाने में असमर्थ होते हैं। अतः इनकी वृद्धि के लिए प्रकाश आवश्यक नहीं है। कवकों की खेती के लिए तीन प्रमुख आवश्यकताएं होती हैं :–

1. उपयुक्त तापमान
2. अच्छी कम्पोस्ट खाद
3. अच्छी किस्म का अण्ड

उपयुक्त तापमान

30–37°C तापमान मशरूम की खेती के लिए उपयुक्त होता है। 15°C से कम तथा 45°C से अधिक तापमान मशरूम की खेती के लिए उपयुक्त नहीं है। भारत के अधिकांश भागों जैसे उत्तर प्रदेश, मध्य प्रदेश, पंजाब हरियाणा, उड़ीसा तथा महाराष्ट्र में इनकी खेती का अनुकूलतम समय अप्रैल से सितम्बर तक होता है। पश्चिम बंगाल के मैदानी भागों में इसे मार्च से सितम्बर के बीच उगाया जाता

है। यदि परिस्थितियां अनुकूल हों तो 30–45 दिनों में मशरूम की एक फसल तैयार हो जाती है। अतः एक वर्धन काल में इनकी अनेक फसलें ली जा सकती है।

कम्पोस्ट खाद

मशरूमों को उगाने के लिए दो प्रकार की कम्पोस्ट खाद प्राकृतिक एवं संश्लिष्ट उपयोग की जाती है। प्राकृतिक कम्पोस्ट खाद घोड़े की लीद में गेहूं अथवा जौ के भूसे को मिलाकर तैयार किया जाती है। सामान्यतः 100 कि.ग्रा. लीद में 33 कि.ग्रा. भूसा मिलाया जाता है। इसे बनाने के लिए अस्तबल से प्राप्त नम लीद के खुली हवा में लगभग एक मीटर उंचे ढेर लगाये जाते है। तीन–चार बाद जब अमोनिया की गंध आने लगे तब इन ढेरों को तोड़कर पुनः बनाया जाता है। इस प्रक्रिया को 5–6 दिन के अंतराल में 4–5 बार दुहराया जाता है। इसी बीच लींद में जिप्सम (25 कि.ग्रा./टन की दर से) मिलाया जाता है और अंत में इस सम्भ्रिण में 4 मिली नेमगॉन छिड़का जाता है।

संश्लिष्ट खाद बनाने के लिए गेहूं के 8–12 सेमी लंबे कण किसी पक्के फर्श में फैलाकर पानी से भली–भांति भिगो लिए जाते है अब इसमें चोकड़ की पूरी मात्रा तथा अन्य संहारकों की आधी मात्रा (जिप्सम को छोड़कर) अच्छी तरह मिला दी जाती है इस सम्भ्रिण के लगभग एक मीटर उंचे ढेर लगाकर उन्हें भली–भांति दबा दिया जाता है। इन ढेरों को पांच दिन के अंतराल पर पुनः तोड़कर उनमें संघटक की शेष मात्रा मिलाकर फिर से लगाया जाता है। यह प्रक्रिया छः बार दोहराई जाती है। तीसरे व चौथे बार ढेरों को तोड़ने पर उनमें जिप्सम की पूरी मात्रा मिला दी जाती है। अंतिम चरण में (लगभग 30 दिन पश्चात) इसमें 10 मिली मेलेथियान (पांच लीटर पानी के घोल में) मिलाया जाता है। इस प्रक्रियां से प्राप्त उत्पाद में पर्याप्त नमीं होती है। तथा इससे अमोनिया की गंध आती है। यह मशरूम की खेती के लिए उपयुक्त खाद होती है। यह सम्मिश्रण 100 सेमी. x 50सेमी. x 15सेमी. आपाम की 20 ट्रे भरने के लिए पर्याप्त है।

संश्लिष्ट खाद तैयार करने हेतु संघटक

संघटक	मात्रा
गेहूं का भूसा	300 कि.ग्रा.
गेहूं का चोकड़	30 कि.ग्रा.
अमोनिया सल्फेट अथवा कैल्शियम अमोनियम नाइट्रेट	6 कि.ग्रा.
यूरिया	4 कि.ग्रा.
पोटाश	1.5 कि.ग्रा.
जिप्सम	30 कि.ग्रा.

अच्छी किस्म का अंड

मशरूम की अच्छी पैदावार के लिए अच्छी किस्म के अंड का प्रयोग आवश्यक है। इसके लिए मशरूम (छमक) के वृत के छोटे–छोटे टुकड़े सरोप (अंड) के रूप में प्रयोग किये जाते है या फिर अवस्थरों (Substractes) को जिन पर छमक उगायें गये हो सरोप (Inoculum) के रूप में प्रयोग किया जाता है। ऐगैरिकस के संरोपण के लिए अवस्थर में गेहूं, राई अथवा बाजरे के बीज मिलाये जाते है जिन्हें बाद में संरोप की तरह प्रयुक्त किया जाता है।

मशरूम विभिन्न माप की पेटियों (beds) में उगाये जाते हैं इन पेटियों का आमाप 1मी.x 1मी.x 1मी.x 3.5मी.x 3.5मी.x 1मी. होता है। ऐगैरिकस के लिए 100 से.मी.x 50से.मी. अमाप की लकड़ी की ट्रे प्रयोग की जाती है। मशरूम की खेती के लिए कम्पोस्ट के ऊपर संरोप छिड़क कर इसे पुनः कम्पोस्ट की एक पतली परत से ढक दिया जाता है। पेटी को पुराने अखबार से ढक दिया जाता है। दो पेटियों के बीच समुचित खाली स्थान छोड़ दिया जाता है इसके लिए लकड़ी के टुकड़ों का प्रयोग किया जाता है। समय–समय पर इनमें पानी छिड़का जाता है। इन ट्रे को 24–26°C तापमान में 12–15 दिन तक रखा जाता है। संरोपण के लगभग 22 दिन में मशरूम की पहली फसल तैयार हो जाती है।

इस प्रकार आधुनिक समय में मशरूम की खेती कृषि का एक आयाम है जिससे विश्व की खाद्य समस्या का समाधान काफी हद तक किया जा सकता है। इसके साथ ही भारत जैसे विकासशील देशों में कुपोषण की समस्या को दूर करने में भी मशरूम खेती एक महत्वपूर्ण साधन सिद्ध हो सकती है। ❑

(लेखक खाद्य एवं औषधि प्रशासन टीकमगढ़ (म.प्र.) में खाद्य निरीक्षक हैं)

सदस्यता कूपन

मैं/हम **कुरुक्षेत्र** का नियमित ग्राहक बनना चाहता हूं/ चाहती हूं/ चाहते हैं।

शुल्क : एक वर्ष के लिए 70 रुपये, दो वर्ष के लिए 135 रुपये, तीन वर्ष के लिए 190 रुपये का

(जो लागू नहीं होता, उसे कृपया काट दें)

डिमांड ड्राफ्ट/भारतीय पोस्टल आर्डर क्रमांक .... दिनांक .... संलग्न है।

नाम (स्पष्ट अक्षरों में) ....

पता ....

.... पिन ....

इस कूपन को काटिए और शुल्क सहित इस पते पर भेजिए :

विज्ञापन और प्रसार प्रबंधक, प्रकाशन विभाग, पूर्वी खंड–4, लेवल–7, रामकृष्णपुरम, नई दिल्ली–110 066

*कृपया ध्यान रखें, आपका डिमांड ड्राफ्ट/भारतीय पोस्टल आर्डर **निदेशक, प्रकाशन विभाग** को नई दिल्ली में देय हो।*

दिल्ली के रैन बसेरे

पवन कुमार

एक आम दिल्लीवासी दिन के उजियारे में भले ही शहर की भीड़भाड़ में उन लोगों को न पहचान पाये जिन्हें जमीं व आसमान मुकम्मल नहीं है लेकिन रात में और खासतौर पर सरदी की रात के कुहासे में फुटपाथों पर, फ्लाईओवर के नीचे, पटरियों, दुकानों पर प्लास्टिक की चादरों में रात बिताने को मजबूर हर उम्र के बाशिंदों की त्रासदी अच्छी तरह समझ सकता है जिनकी तादाद एक से डेढ़ लाख के बीच में है। ऐसा नहीं कि इन बाशिंदों में सिर्फ मजदूरी करने वाले पुरुष हों इनमें नन्हे मुन्ने–बच्चे व महिलाएं भी शामिल हैं। राजधानी दिल्ली में इस समय कुल 51 रैन बसेरे चल रहें हैं जिनमें 12 दिल्ली नगर निगम स्लम व जेजे डिपार्टमेंट रैन बसेरा चला रहा है। बाकी गैर–सरकारी संस्थाएं। दिल्ली नगर निगम जो कि 1500 लोगों को आश्रय प्रदान कर रहा है। इसके अलावा स्वयं सेवी संस्थाएं दो हजार के करीब लोगों को स्थायी व अस्थायी आश्रय दे रही हैं। कुल मिलाकर केवल 7 से 8 हजार लोगों के पनाहगाह का इंतजाम हो पाया है। हमारे देश के अधिकांश बेघर लोगों को सर्दी व वर्षा की रातों से बचाने वाला आश्रय प्रायः ठीक से उपलब्ध नहीं हो पाया है। बेघर लोगों को सबसे बड़ी जरूरत है अच्छी तरह बनाए गए सही व्यवस्था से चलाए जा रहे रैन बसेरों की, जहां उनके आवास की न्यूनतम आवश्यकताएं पूरी हो सकें।

बात शुरू करते हैं महिलाओं के बसेरों की। अब तक दिल्ली में महिलाओं के लिए केवल एक बसेरा था बंगला साहिब गुरुद्वारा के नजदीक वाईडब्लूसीए कैंपस में स्थित "अनुग्रह" नामक रैन बसेरा। लेकिन 13 दिसम्बर को महिलाओं के लिए एक और बसेरे का इंतजाम शंकर गली, सीताराम बाजार आसफ अली रोड में एमसीडी ने कर दिया है जिसकी

क्षमता 20 व्यक्तियों के लिए है जिसे बढ़ाकर जल्दी ही 50 कर दिया जाएगा। यहां बिल्कुल मुफ्त सेवा है। ड्रीम इंडिया फाउंडेशन द्वारा स्थापित इस रैन बसेरे में सुविधाओं के नाम पर एक कम्बल व एक दरी दी जाती है। इस रैन बसेरे में ठहरी गोरखपुर, उत्तर प्रदेश से आई ममता बताती हैं कि हमने बीएससी किया है। नौकरी की तलाश में मैं दिल्ली आई हूं सुरक्षा व सुविधा के नजरिए से यह रैन बसेरा बहुत ही बेहतर है। यहां की सिक्यूरिटी इंचार्ज चमेली देवी बताती हैं कि अभी लोगों को इस रैन बसेरे के बारे में ठीक से जानकारी नहीं है, काफी अंदर पड़ता है इसलिए यहां महिलाएं नहीं आ पा रही हैं।

दिल्ली गेट स्थित रैन बसेरा की क्षमता 50 लोगों की है। शाम 7 बजे से प्रातः 7 बजे का चार्ज केवल 6 रुपये देना पड़ता है। यहां के चौकीदार नवीन चंद्र कहते हैं हमारे यहां ज्यादातर मजदूर आते हैं। एक दरी व दो कम्बल प्रत्येक व्यक्ति को दिया जाता है। जिला बदायूं के नेकपाल पेशे से पेंटर हैं, जो पिछले पांच साल से इसी रैन बसेरे में ठहरते हैं। कमाई महीने में 15 दिन, मेहनताना कभी 200 रुपये तो कभी 250 रुपये। नेकपाल कहते हैं कि इससे सस्ता कुछ नहीं हो सकता कि 6 रुपये बारह घंटे तक कोई दिल्ली में जगह दे दे। बिहार के सासाराम से आए रतनलाल का घर बीते 15 साल से यही रैन बसेरा है। अब तक कोई पक्का ठिकाना नहीं बना पाए हैं। शाम 7 बजे आना और सुबह नहा धोकर काम की तलाश में निकल जाना।

पुरानी दिल्ली रेलवे स्टेशन के पास फतेहपुरी में एक दूध की दुकान पर काम करने वाला राकेश का ठिकाना रात को दिल्ली नगर निगम का रैन बसेरा ही है। यह रैन बसेरा एक गैर सरकारी संगठन "बटरफ्लाई" चला रहा है। बटरफ्लाई अवारा बच्चों को पढ़ाने–लिखने और सहारा देने के काम में लगा हुआ है। दूध की दुकान का मालिक उसे दिनभर में काम करने के बदले महज 30 रुपये रोज देता है। इसमें दो रुपये रैन बसेरे में रुकने के लिए और रात को खाने के लिए तीन रुपये देने पड़ते हैं। सुबह एक बार नाश्ता करके काम चला लेता है। नाश्ते पर भी उसके दो रुपये खर्च हो जाते हैं। उसकी इच्छा भी अपना कारोबार करने की है।

उत्तर प्रदेश के जिला हरदोई से दिल्ली में टैंट की दुकान पर काम करने वाला 14 साल का अजय महीने में दो से तीन हजार के बीच कमा लेता है। टैंट लगाने–उखाड़ने का काम उसे आ गया है। महीने में 500 रुपये खर्चा करके बाकी पैसा अपने घर भेज देता है। उसकी भी कहानी बाकी बच्चों की तरह है। घर में मां–बाप हैं। भाई–बहन हैं। उसका बड़ा भाई लखनऊ में मजदूरी करता है। गांव में मां–बाप भी खेतों में काम करते हैं। अजय ने बताया कि बटरफ्लाई के रैन बसेरे में उसे

तीन रुपये में अच्छा खाना मिल जाता है। सुबह दो रुपये में ब्रेड, दूध और केला नाश्ता में मिलता है। खाने के बाद टॉफी भी मिल जाती है। रात को रैन बसेरे में ऐसे बच्चों के लिए पढ़ाई भी कराई जाती है।

कोलकाता से दिल्ली आया राहुल बाकी बच्चों से अलग दिखाई देता है। उसने कपड़े भी बाकी बच्चों के मुकाबले साफ–सुथरे और अच्छे पहने हुए हैं। कोलकाता में हॉस्टल में पढ़ने वाला राहुल अध्यापक की पिटाई के कारण भाग गया था। अब यहां रहकर ओपन स्कूल से अपनी पढ़ाई कर रहा है। यहां रैनबसेरे में रहने की बात उसके परिवार वाले जानते हैं। अभी वह ग्रीन पार्क में मोमबत्ती बनाने का काम करता है। मोमबत्ती बनाने के काम में उसे सौ से डेढ़ सौ रुपये मिल जाते हैं। उसे भी रैन बसेरे में रहना अच्छा लगता है। इसकी वजह कम खर्च में रहना और खाना मिलना भी है। 13 साल का राजू शाहदरा से काम करने के लिए फतेहपुरी आता है पर रात को देर होने पर रैन बसेरे में रुक जाता है। सर्दी के मौसम में देर से घर जाना और सुबह जल्दी आने से बेहतर उसे रैन बसेरे में रहना अच्छा लगता है। उसकी मां भी बाजार सीताराम में महिलाओं के लिए बने रैन बसेरे में रुक जाती है।

छोटी–सी उम्र में परिवार का बोझ उठाने वाले बच्चों के भी अपने सपने हैं। आज बेशक ये नन्हे मजदूर फुटपाथ या रैन बसेरों में सोते हैं पर बाकी बच्चों की तरह संसार बसाने के उनके अपने सपने हैं। मजदूरी करने वाले ये बच्चे बड़ा होने पर अपना कारोबार करना चाहते हैं। इनमें काफी बड़ी संख्या में बच्चे राजधानी के फुटपाथों पर, फ्लाई ओवर के नीचे, पटरियों, दुकानों के आगे प्लास्टिक की चादरों में रात बिताने को मजबूर हैं। इनमें कुछ ही ऐसे होंगे जो शायद ही कभी अपनी नींद पूरी करते होंगे। अपने मां–बाप और भाई–बहनों के सपने पूरे करने के लिए मजदूर बने ये बच्चे पैसे बचाने के लिए खाना भी पूरा नहीं खाते हैं और दो जोड़ी कपड़ो में ही महीनों गुजार देते हैं।

कनाट प्लेस स्थित हनुमान मंदिर के आसपास सोने वाला गया का 14 साल का पप्पू अपने मां–बाप की मदद करने के लिए चाय की दुकान में काम करता है। कई बार रात को दुकान पर तिरपाल ओढ़ कर ही सो जाता है। अभी उसकी इतनी कमाई नहीं होती है कि किसी रैन बसेरे में जाकर भी सो सके। महीने में बारह सौ कमाने के बाद ज्यादातर पैसा घर ले जाने के लिए जमा कर रहा है।

दिल्ली के लोगों को छत मुहैया कराने के लिए एमसीडी ने हाल ही में 15 नये रैन बसेरे स्थापित करने की घोषणा की है। जिनमें से 5 तो केवल महिलाओं के लिए होंगे। इसके साथ–साथ बेघर संघर्ष समिति, युवा एकता मंच, प्रयास, आश्रम अधिकार मंच आदि भी इन्हें आश्रय देने के लिए लगातार संघर्षरत हैं। इनसे भले ही एक से डेढ़ लाख लोगों को पनाह मिले या न मिले में 10 फीसदी लोगों का जरूर सुविधा दे पा रहें हैं इसमें कोई दो राय नहीं है। शत–प्रतिशत लोगों को आश्रय तभी मिल पाएगा जब इस काम में सरकार–गैर सरकारी संस्थाएं व उद्योगजगत जी जान से खुलकर सामने आएंगे। इनके आपसी सहयोग से ही इन्हें छत मुहैया हो पाएगी।

आश्रय क्षमता तेजी से बढ़ाने का एक सस्ता उपाय यह है कि विभिन्न कार्यालय, धर्मस्थल, विद्यालय, आवास आदि रात के समय लगभग शाम 7 बजे से प्रातः 7 बजे तक खाली पड़े रहते हैं उन्हें इस समय खोल दिया जाए। इन प्रयासों में सफलता मिलने से घोर सर्दी के दिन में सैकड़ों लोगों को आश्रय प्राप्त हो सकेगा।

दिल्ली में चल रहे रैन बसेरे निम्नलिखित हैं :–

1. दिल्ली गेट बाजार, 2. कटरा मौला बक्श, रोशनआरा पार्क, 3. निजामुद्दीन बस्ती, 4. जी.टी. शाहदरा, 5. सराय पीपलथला, जहांगीरपुरी, 6. शहजादा बाग, 7. रानी झांसी रोड, 8. कुतुब रोड ब्रिज लाहौरी गेट, 9. डीटीसी बस डिपो राजा गार्डन, 10. आर ब्लाक, मंगोलपुरी, 11. फतेहपुरी रेलवे स्टेशन व 12. भाईमति दास चौक, चांदनी चौक।

स्वयंसेवी संस्था आश्रय अधिकार अभियान के तहत चलाए जा रहे रैन बसेरे– सिंघारा चौक, झंडेवालान, बस्ती रविदास नबी करीम, गली तेल मिल वाली कटरा करीम, छोटा बाजार, कश्मीरी गेट, सीएनजी पम्प वजीराबाद, जहांगीरपुरी पोर्टा केबिन (महिलाओं के लिए), मादीपुर, यमुनापुश्ता विजय घाट, सीताराम बाजार, आसफ अली रोड (महिलाओं के लिए)।

अस्थायी रैन बसेरे

जामा मस्जिद पार्क, डीडीए पार्क यमुना बाजार, डीडीए पार्क, निजामुद्दीन, बस स्टैंड फव्वरा चौक, लाल बत्ती निगमबोध घाट, एमसीडी पार्क, दिल्ली गेट, जीपीओ कश्मीरी गेट, आजाद मार्केट फुटपाथ, एमसीडी पार्क, मोरी गेट, डीडीए पार्क, ईदगाह, डीडीए लैंड, कालकाजी, आनंद पर्वत, एम ब्लॉक, रघुवीर नगर।

इसके अलावा अस्थायी रैन बसेरे जो एनडीएमसी द्वारा चलाए जा रहे हैं– इनमें हैं ग्वालियर पॉटरी स्कूल, सरोजनी नगर, (महिलाओं के लिए) और सेंट कोलम्बस स्कूल। ❑

(लेखक स्वतंत्र पत्रकार हैं)

चेहरों का रहस्य खोलता शिल्पी

रवि भारती

छत्तीसगढ़ के बस्तर जिले के ढोकरा शिल्पी पंचूराम सागर की गिनती उन गिने–चुने कलाकारों में होती है जिन्होंने इस शिल्पकला को न केवल नए आयाम दिए बल्कि राष्ट्रीय पहचान भी दी। उनके अद्‌भुत कामों के लिए कई प्रतिष्ठित कला संस्थाओं के अलावा, केन्द्र व राज्य सरकार ने भी उन्हें पुरस्कारों से नवाजा है। जिस धातु से यह कलाकार सुंदर–कलात्मक और आकर्षक शिल्पकृतियां बनाता है, उसका इतिहास बहुत पुराना है। विश्व की सर्वाधिक पुरानी सभ्यता मोहन–जोदाड़ो से मिली कांस्य की युवा नर्तकी इसका प्रमाण है कि यह कला उस वक्त भी अस्तित्व में थी। सिर्फ भारत में ही नहीं, मिस्र, इराक, चीन, रोम, सरीखे देशों में भी इस तरह की कृतियां वर्षों तक बनाई जाती रहीं। 14–16वीं सदी के दौरान यह कला बेनिन के शासनकाल में खूब फली–फूली। इधर सौ सालों में यह समकालीन मूर्तिशिल्पियों की चहेती भी रहीं।

हमारे देश में ढोकरा कृतियां झारखण्ड, उड़ीसा, मध्य प्रदेश, आंध्र प्रदेश, पश्चिम बंगाल और छत्तीसगढ़ के रायगढ़, बस्तर और सरगुजा जिलों के छोटे–छोटे गांवों में आदिवासी बनाते हैं। इनका काम धातु शिल्प की मूर्तिकला पर केन्द्रित है। विशेषकर पीतल, एल्मयूनियम, कांसे और गिलट धातुओं से निर्मित मूर्तिकला पर। इसमें सोने–चांदी आदि धातुओं का बिल्कुल उपयोग नहीं होता है। लगभग सभी स्थानों पर इनकी ढलाई की मूल प्रक्रिया एक जैसी है। औज़ार और भट्ठियों में भी समानता है। थोड़ा बहुत फर्क अलग–अलग जगहों पर पाई जाने वाली सामग्रियों को लेकर है। लेकिन सभी राज्यों के रूपाकार और अलंकरण की अपनी निजी पहचान हैं। इस कलाकार का काम भी बिल्कुल अलग ढंग का है। यह खुद को गढ़वा शिल्पी कहता है। गढ़वा का मतलब गढ़ने वाले से है। और सचमुच जो वह गढ़ता है वह देखते ही बनता है। उसकी ज्यादातर शिल्पकृतियां पौराणिक हैं। इनमें से कईयों को कलाप्रेमियों ने खूब सराहा है, तो कुछेक को पुरस्कार भी मिल चुका है। मसलन बूढ़ी माता देवी का हिण्डोला और दण्डामी स्त्री–पुरुष के मुखौटे। बूढ़ी माता देवी कृति में माता के कई रूप हैं। हर रूप दर्शनीय और पूजनीय है। यह बस्तर संस्कृति का प्रतीक है। आदिवासी समूहों की उनमें गहरी आस्था है। इसलिए हर गांव में उसकी मूर्ति पूजी जाती है। ऐसा माना जाता है कि माता संकटमोचन है, अनिष्टकारी ताकतों का विनाश करती है, इसके रहते गांव पर विपत्ति नही आती है। इस अनुपम कृति को वर्ष 1999 में राष्ट्रीय पुरस्कार मिल चुका है। दण्डामी के स्त्री–पुरुष के मुखौटे वास्तव में बस्तर की दुर्लभ जनजाति के विलुप्त चेहरे हैं, जिनकी अपनी दुनिया और संस्कृति है और जो दशकों से उपेक्षाओं की गहरी मार झेल रहे हैं। यह जनजाति तमाम विकास के बावजूद आज भी घने जंगलों में रहती है, कंद–मूल खाती है और नग्न घूमती है। 1999 में इस श्रेष्ठ शिल्पी को भी राज्य का पुरस्कार मिल चुका है। कलाकार के मुताबिक उनकी प्रत्येक कृति की रचना–प्रक्रिया जटिल है, इसकी ढलाई–घिसाई तेरह अलग–अलग स्तरों से हो कर गुजरती है।

इस अनूठी शिल्पकला के अलावा, यह कलाकार भित्ति–चित्रकार है, लोक–गीतकार है, बस्तर आकाशवाणी में वार्ताकार है, कई स्थानीय सामाजिक–सांस्कृतिक संस्थाओं से जुड़ा हुआ है। अपने नवीनतम मूर्तिशिल्पों पर उसका कहना है कि वह फिलहाल बस्तर के ही चेहरों पर काम करना चाहता हैं क्योंकि यह चेहरे आम चेहरे नहीं है बल्कि प्राचीन संस्कृतियों से जुड़े चेहरे है, जो पौराणिक कहानियों के छिपे रहस्य खोलते हैं। ❑

(लेखक स्वतंत्र पत्रकार हैं)

लघु उद्योग क्षेत्र : संरक्षण से संवर्धन की ओर

चंचल कुमार शर्मा

लघु उद्योगों को 'भारतीय अर्थव्यवस्था की नींव', भारत की प्रगति के आधार स्तंभ और 'देश की आर्थिक संरचना के गुंजायमान घटक कहा जाता है। लघु उद्योग का अभिप्राय ऐसे औद्योगिक संस्थान से है जिसमें लगाए गए संयंत्रों या मशीनों से संबंधित नियत परिसंपत्तियों में निवेश एक करोड़ रुपए से अधिक न हो (होजरी) और हस्त उपकरणों के लिए यह सीमा पांच करोड़ रुपये तक बढ़ा दी गयी है)। निवेश सीमा को गिनते हुए जमीन और इमारत में लगाए धन को नहीं गिना जाता। इसमें केवल संयंत्र और मशीनरी में लागत को शामिल किया जाता है चाहे यह निवेश स्वामित्व वाली शर्तों पर हो या लीज पर या हायर परचेज द्वारा हो।

स्वतंत्रता से पूर्व अंग्रेजों ने इस उद्योग को नष्ट करने में कोई कसर नहीं छोड़ी। स्वतंत्रता के बाद लघु उद्योगों के लिए सबसे बड़ा खतरा भारत के बड़े उद्योगों के रूप में विद्यमान रहा। किन्तु 1955 में राष्ट्रीय लघु उद्योग निगम की स्थापना के बाद से लघु उद्योगों का निरंतर विकास भारतीय अर्थव्यवस्था का एक मूल तत्व रहा है। 1947 में भारत में 1000 लघु उद्योग थे। इसने भारत के सकल घरेलू उत्पाद की वृद्धि में तो महत्वपूर्ण योगदान दिया ही है साथ ही रोजगार उपलब्ध कराने और निर्यात बढ़ाने में भी उल्लेखनीय योगदान दिया है। दसवीं पंचवर्षीय योजना (2002–07) के दस्तावेज में यह लिखा गया है कि लघु उद्योग उपभोक्ता वस्तुओं के उत्पादक और अतिरिक्त श्रम बल का अवशोषक है। अतः यह गरीबी और बेरोजगारी हटाने का अचूक साधन है। इसके साथ–साथ यह राष्ट्रीय आय के समतापूर्ण वितरण और संतुलित क्षेत्रीय आर्थिक विकास को सुनिश्चित करता है। यह उद्यमशीलता के पोषक और संवर्धक के रूप में कार्य करता है। यह स्थानीय साधनों, क्षमताओं और कौशल को भी गतिशील करता है जो अन्यथा बिना किसी उपयोग में आए ही बर्बाद हो जाते हैं। भारत की 90 प्रतिशत से अधिक औद्योगिक इकाइयां लघु उद्योगों की हैं जिनका "विनिर्माण सेक्टर में होने वाले कुल उत्पादन में 40 प्रतिशत से अधिक का योगदान है। यह 1.92 करोड़ लोगों को रोजगार देता है (जो कुल रोजगार के 75 प्रतिशत से अधिक है)। कुल निर्यात का 35 प्रतिशत का निर्यात भी लघु उद्योगों द्वारा ही होता है। स्पष्ट है कि कृषि के बाद लघु उद्योग ही ऐसा क्षेत्र है जिसमें अधिकांश जनता संलग्न है।" (लघु उद्योग मंत्रालय, रिपोर्ट, 2004).

लघु उद्योग क्षेत्र का सबसे बड़ा लाभ यह है कि ये बेरोजगारी की समस्या का एक अचूक समाधान है। यह क्षेत्र करोड़ों लोगों को रोजगार दे सकता है। इसके परिणामस्वरूप राष्ट्रीय संसाधनों का अपव्यय होने से बचता है और उनका सदुपयोग हो सकता है। अतः लघु उद्योग क्षेत्र का अच्छा प्रदर्शन राष्ट्रीय आर्थिक वृद्धि पर प्रत्यक्षतः अनुकूल प्रभाव डालता है। लघु उद्योग मंत्रालय की वर्ष 2004 की रिपोर्ट के अनुसार "1994–95 में लघु उद्योगों की 25 लाख इकाइयां थीं जिन्होंने 2,98,886 करोड़ रुपये का उत्पादन किया और 146 लाख लोगों को रोजगार दिया। 2002–03 में लघु उद्योग की इकाइयां बढ़कर 35 लाख हो गयी, जिनके द्वारा 7,42,021 करोड़ रुपये की कीमत का उत्पादन किया गया और 199 लाख लोगों को रोजगार प्राप्त हुआ।"

भूमंडलीयकरण, आर्थिक उदारीकरण और लघु उद्योगों की प्रासंगिकता

खुली अर्थव्यवस्था और उदारीकरण की नीतियों के परिणामस्वरूप लघु उद्योगों को सुरक्षा और संरक्षण प्रदान करने वाले परम्परागत तरीकों से सरकार को पीछे हटना पड़ रहा है। बदली हुई उदारीकृत आर्थिक परिस्थितियों में डब्लू.टी.ओ.की शर्तें आरक्षण द्वारा दिए संरक्षण को मुक्त व्यापार में एक बाधा मानती हैं। किन्तु इसका अर्थ यह नहीं कि लघु उद्योग के महत्व और उनकी प्रासंगिकता में कोई कमी आ गई है।

वस्तुत : भूमंडलीकरण और आर्थिक सुधारों के बदले हुए संदर्भ में आज उद्योगों की प्रासंगिकता जितनी अधिक हो गयी है उतनी शायद पहले कभी नहीं थी। इसका कारण यह है कि आर्थिक सुधारों और आधुनिकीकरण के परिणामस्वरूप बड़े उद्योगों में व्यक्तियों का स्थान मशीनें ले लेती हैं, ऐसा करना उनके लिए अनिवार्यता है क्योंकि भूमण्डलीकरण के माहौल में अपने अस्तित्व की रक्षा के लिए उन्हें उत्पादों की गुणवत्ता बढ़ाने और कीमतें कम करने के आवश्यकता होती है। इसके परिणामस्वरूप एक अनूठी प्रक्रिया का जन्म होता है जिसे अर्थशास्त्री रोजगार–रहित समृद्धि (जॉबलैस ग्रोथ) कहते हैं। ऐसी स्थिति में यदि कोई उम्मीद की किरण है तो वह लघु उद्योग क्षेत्र में ही है। यही वह क्षेत्र है जो सामाजिक न्याय के साथ संवृद्धि को सुनिश्चित कर सकता है। लघु उद्योगों के विकास से गरीबी और बेरोजगारी जैसी दो प्रमुख चुनौतियों का सामना किया जा सकता है क्योंकि यही वह क्षेत्र है जिससे श्रम से परिपूर्ण किंतु पूंजी के अभाव से ग्रस्त भारत जैसे विकासशील देश में कम निवेश के साथ भारी मात्रा में रोजगार उपलब्ध कराया जा सकता है और अमीर–गरीब के बढ़ते अंतर को कम किया जा सकता है।

अत : लघु उद्योगों के उनकी किस्मत पर नहीं छोड़ा जा सकता। यदि सूक्ष्मता से विचार किया जाए तो जितनी उद्यमवृत्ति इस सेक्टर में पाई जाती। हमारे देश के लघु उद्यमियों ने प्रतिस्पर्धा की हर चुनौती का जिस ढंग से सामना किया है उसी के परिणामस्वरूप इस क्षेत्र का प्रदर्शन बड़े उद्योग से बेहतर रहा है।

यहां चिंता का विषय है कि वर्तमान समय में जितनी इस क्षेत्र की प्रासंगिकता बढ़ी

है उतनी ही इन उद्योगों की रुग्णता बढ़ गई है।

आर्थिक उदारीकरण और लघु उद्योगों की बढ़ती रुग्णता

1991 में आर्थिक सुधार लाए जाने के साथ ही यह सेक्टर बड़े उद्योगों और बहुराष्ट्रीय कम्पनियों के लिए खोल दिया गया। मात्रक प्रतिबन्धों को हटाने और आरक्षण सूची के मदों को ओ.जी.एल.पर रखने से मदों को केवल लघु उद्योग के लिए आरक्षित करने की नीति व्यर्थ हो गई है। खुली अर्थव्यवस्था को अपनाने से सस्ते आयात को बढ़ावा मिला है जिसके कारण लघु उद्योगों के मार्केट में गम्भीर प्रतियोगिता का सामना करना पड़ रहा है। भूमण्डलीकरण ने ग्लोबल मार्केट्स को जन्म दिया है। प्रत्येक देश में केवल उस देश की ही नहीं बल्कि अन्य देशों की वस्तुएं भी मिलती हैं जो स्वदेशी वस्तुओं से बेहतर और सस्ती होती हैं। ग्राहकों को स्वदेशी वस्तुएं खरीदनें के लिए बाध्य नहीं किया जा सकता। आरक्षण को समाप्त करने की प्रक्रिया के कारण लघु उद्योगों के क्षेत्र में बड़े उद्योगों ने प्रवेश कर लिया है जिससे लघु उद्योगों द्वारा निर्मित वस्तुओं की मांग में भारी गिरावट आई है।

परिणाम सामने है। आज अधिकांश लघु उद्योग रुग्ण अवस्था में हैं तो कुछ अन्य लगभग मृत हो चुके हैं। किन्तु ध्यान रखने योग्य बात यह है कि रुग्णता के लिए बाह्य कारण न केवल प्रभावहीन हो सकते हैं बल्कि उनके द्वारा दी गई चुनौतियां प्रगति की प्रेरक स्रोत बन सकती हैं। भूमण्डलीकरण जनित बाह्य परिस्थितियों का मुकाबला करने के लिए आवश्यक है कि लघु उद्योग अपनी प्रबंधकीय कमियों को दूर करें, संसाधनों को सही दिशा में संचालित करें, अनुसंधान और विकास पर पर्याप्त ध्यान दें तथा आधुनिक प्रौद्योगिकी और मशीनरी का प्रयोग करें।

यदि नवम्बर, 2002–अप्रैल, 2003 में हुए सर्वेक्षण द्वारा जारी आकड़ों पर एक नजर डालें तो ज्ञात होता है कि लगभग 8.68 लाख लघु उद्योग की इकाइयां (कुल इकाइयों का 37.65 प्रतिशत) बंद हो चुकी हैं। इनमें आधी से अधिक इकाइयां तमिलनाडु, उत्तर प्रदेश केरल, मध्यप्रदेश और महाराष्ट्र में पायी गयी हैं। लघु उद्योग पर नवीनतम सैंसस के अनुसार इसके परिणामस्वरूप एक करोड़ रुपये से भी अधिक रोजगार समाप्त हुए हैं। निःसंदेह इस अवधि में 84 लाख नवीन रोजगारों का सृजन हुआ है किन्तु यह संख्या पूर्वस्थापित रोजगारों के विलोप की भरपाई करने अपर्याप्त है। अतः स्पष्ट है कि भारत में लघु उद्योगों में तीव्र गति से अस्वस्थता का आना एक चिन्ताजनक विषय है। उद्योगों के रुग्ण होने से संसाधन और सम्पत्ती तालाबंद हो जाते हैं। पूंजीगत परिसम्पत्तियों की क्षति होती है, उत्पादन में कमी और बेरोजगारी बढ़ती है।

उल्लेखनीय है कि लघु उद्योगों की रुग्णता के लिए जिम्मेदार एक अन्य समस्या वित्तपोषक की है। आवधिक ऋण तथा कार्यशील और पूंजी ऋण स्वीकृत किए जानें में अंतराल के कारण लघु उद्योगों को अपना व्यवसाय करने के लिए अपनी जमा राशि पर निर्भर रहना

लघु उद्योग : अर्थव्यवस्था का आधार

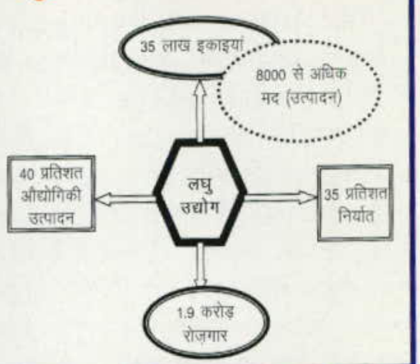

पड़ता है। लघु उद्योगों को ऋण देने में बैंकों की कोई रुचि नहीं होती। बैंकों की रुचि सरकारी प्रतिभूतियों में निवेश करने की या उपभोक्ता वित्तपोषण करने की होती है। भूमण्डलीकरण के संदर्भ में कार्यशील पूंजी की अपर्याप्तता और ऋण का अभाव लघु उद्योगों के भविष्य निर्धारण में निर्णायक साबित हो सकता है। उल्लेखनीय है कि सार्वजनिक क्षेत्र के बैंकों द्वारा क्रेडिट में लघु उद्योगों का हिस्सा लगातार घट रहा है। रिजर्व बैंक बुलेटिन के अनुसार मार्च 1998 में यह हिस्सा 17.5 प्रतिशत से घट कर 2003 में केवल 11.1 प्रतिशत रह गया। इसके अतिरिक्त राज्य वित्तीय आयोगों द्वारा लघु उद्यागों को दी जाने वाली सहायता में भी कमी आई है। आई.डी.बी.आई की वार्षिक रिर्पोट के अनुसार यह सहायता 1995–96 में 1675.4 करोड़ रुपये से घट कर 1999–2000 में 1,083 करोड़ रुपये रह गयी।

प्रश्न यह उठता है यदि आर्थिक उदारीकरण ने एक तरफ लघु उद्योगों की प्रासंगिकता को बढ़ाया है और दूसरी तरफ उनकी रुग्णता को, तो क्या लघु उद्यागों को बचाने के लिए सरकार 'संरक्षणवादी' नीतियों की ओर फिर से मुड़ जाए ? तो विकल्प पर विचार करने से पूर्व आइए "क्यों नहीं" के उत्तर को अग्रलिखित दो महत्वपूर्ण पहलुओं के वर्णन द्वारा स्पष्ट कर ले : (क) आरक्षण नीति क्यों अपनाई गई? (ख) 1997 के बाद इस नीति को क्यों उलट दिया गया ?

आरक्षण या अनारक्षण

लघु उद्योगों के उत्पादों की मांग में कमी आने और उनकी रुग्णता बढ़ने का अर्थ नहीं है कि भारत को फिर से संरक्षणवादी नीतियों की ओर वापिस चले जाना चाहिए। ऐसा करना न तो संभव है कि और न वांछनीय। जनवरी, 1997 में अबिद हुसैन कमेटी ने कहा कि आरक्षण की नीति उन्मुक्त व्यापार की दिशा में होने वाले सुधारों के खिलाफ है अतः इसे समाप्त किया जाना चाहिए। तब से आरक्षित वस्तुओं की संख्या में लगातार कमी आ रही है। आर्थिक सर्वेक्षण 2004–05 के अनुसार, औद्योगिक समृद्धि को अवरुद्ध करने वाले कारकों लघु उद्योगों के लिए आरक्षण की व्यवस्था एक प्रमुख कारक है।

यदि सैद्धांतिक रूप से देखा जाए तो यह ठीक ही लगता है कि जिन वस्तुओं का उत्पादन छोटे पैमाने पर हो सकता है उनके उत्पादन के लिए बहुराष्ट्रीय कम्पनियों या देशज बड़े उद्योगों को अनुमति नहीं मिलनी चाहिए। भारत के नीति निर्माताओं ने लघु उद्योगों को संरक्षण प्रदान करते हुए इस सिद्धांत का पालन किया। 1967 में 44 वस्तुएं केवल लघु उद्योगों के उत्पादन के लिए आरक्षित करने की नीति बनाई गयी। धीरे–धीरे आरक्षित वस्तुओं की संख्या बढ़ती गयी। 1996 तक यह स्थिति बनी रही। वास्तव में आरक्षण नीतियों की अग्रलिखित उपलब्धियों ने इसकी न्यायसंगतता को बनाए रखा : (क) आरक्षण ने लघु उद्योग क्षेत्र को घरेलू और निर्यात बाजार दोनों में वृद्धि करने में सहायता दी है (जिससे बड़े पैमाने पर रोजगार सृजन हुआ है)। (ख) इस नीति से उप–संविदा और विक्रेता

विकास का संवर्धन हुआ है।

किन्तु पिछले दशक में लघु उद्योग के लिए आरक्षित अनेक वस्तुएं आरक्षण सूची निकालने की नीति को अपनाया गया। 3 अप्रैल, 1997 में मदों को अनारक्षित किया गया। 2002 तक आरक्षित वस्तुओं की संख्या घट कर 675 रह गई और अक्टूबर 2004 में यह संख्या 605 रह गयी। बजट 2005–06 में घोषणा की गयी है कि 108 वस्तुओं का उत्पादन लघु उद्योग आरक्षण की नीति से बाहर कर दिया जाएगा। (जिनमें 30 मद होजरी सहित अन्य वस्त्र संबंधी उत्पाद हैं)। वास्तव में आरक्षण नीति के कुछ अप्रत्याशित नतीजों और बदलती परिस्थितियों ने सरकार को आरक्षण नीति उलटने के लिए बाध्य किया, जैसे : (क) आरक्षण ने निर्भरता संरक्षण को विकसित किया है। (ख) उपभोक्ता को घटिया और असुरक्षित वस्तुएं खरीदने के लिए बाध्य होना पड़ा है। (ग) लघु उद्योग क्षेत्र बड़ी मात्रा में माल का उत्पादन और सप्लाई करने में असमर्थ रहा है। (घ) आरक्षित मदों में क्षमता उपयोगिता कम रही है। (ड) उदारीकरण और भूमण्डलीकरण के संदर्भ में आरक्षण व्यर्थ और असंगत हो गया है।

तो क्या इसका अर्थ यह है कि लघु उद्योग को उसके हाल पर ही छोड़ दिया जाए ? कदापि नहीं। वस्तुत : नयी परिस्थितियों को ध्यान में रखते हुए, लघु उद्योगों के विकास को सुनिश्चित करने वाली नई नीतियां बनाई जा सकती हैं।

नया संदर्भ नए समाधान : संरक्षण से सवर्धन की ओर

उदारीकरण और प्रतियोगी आर्थिक क्रिया–कलापों की बदली हुई परिस्थितियों में बनते हुए आर्थिक परिदृश्य को ध्यान में रखते हुए लघु उद्योग के विकास के लिए पुरानी नीतियों को जारी नहीं रखा जा सकता। उदारीकरण आर्थिक परिस्थितियों में सरकार ने अपनी नीतियों को संरक्षण की ओर मोड़ने की आवश्यकता है एक संतुलन की। संरक्षण हटाने और सुधार लाने में यदि संतुलन नहीं होगा तो परिणाम प्रतिकूल भी हों सकते है। यहां संतुलन का अर्थ होगा, सुधारों की गति को संरक्षण हटाने की गति से तीव्र और आगे रखना। अतः लघु उद्योगों के लिए क्रेडिट प्रवाह संवर्धन, विपणन सहायता, गुणवत्ता सुधार, संवृद्धि केंद्रों की स्थापना और विदेशी सहयोग को सरल बनाने के क्षेत्र में तीव्र गति से प्रयास होने चाहिए। उल्लेखनीय है कि 2004–05 के बजट में पूंजी सब्सिडी योजना का उदारीकरण किया गया और लघु के संवर्धन के लिए 135 करोड़ रुपये का प्रावधान किया गया। वर्ष 2005–06 के लिए यह प्रावधान बढ़ा कर 173 करोड़ रुपये कर दिया गया है। इसके साथ–साथ लघु उद्योगों को प्रोत्साहन देने के लिए वित्त मंत्री ने कुछ कर रियायतों की घोषणा भी की है जैसे– लघु उद्योगों के लिए लेन–देन पर आधारित छूट सीमा को 3 करोड़ रुपये प्रतिवर्ष से बढ़ा कर 4 करोड़ रुपये प्रतिवर्ष कर दिया है।

आरक्षण पश्चात् बनी परिस्थितियों में सरकार को लघु और बड़े उद्योगों के बीच एक बराबरी का माहौल तैयार करने की नीति अपनानी चाहिए। बड़े उद्योग महंगी विज्ञापनबाजी और आक्रामक मार्केटिंग का सहारा लेकर लघु उद्योगों को बाजार में प्रवेश तक नहीं प्राप्त करने देते। अत : कुछ ऐसे उपाय किए जाने चाहिए जिससे इस प्रकार का असंतुलन ठीक हो सके। सरकार इन उद्योगों को आधुनिक तकनीकें और विकसित टेक्नोलोजी का प्रयोग करने संबंधी सहायता, परापमर्श और प्रशिक्षण दे सकती है। वास्तव में दसवीं पंचवर्षीय योजना में सीडो (लघु उद्योग विकास संगठन) की इस भूमिका पर विशेष बल दिया गया है। इसके अतिरिक्त भारत की अनेक राज्य सरकारें लघु उद्योगों को बचाने के लिए उन्हें प्रशिक्षण देकर उनकी क्षमता बढ़ा रही हैं ताकि वे आरक्षण हटने से बढ़ने वाले कम्पटीशन में सफल हो सकें। यहां ध्यान रखने योग्य बात यह है कि अचानक से आरक्षण समाप्त करना उचित नहीं होगा। क्योंकि लघु उद्योग क्षेत्र में आरक्षित घटक आज भी रोजगार, उत्पादन और निर्यात में महत्वपूर्ण योगदान दे रहे हैं। अत : लघु उद्योग क्षेत्र में ही विनिर्माण के लिए उत्पादों का आरक्षण कुछ मात्रा में अभी जारी रहना चाहिए और चुनिंदा आरक्षण उद्योगों से विचार–विमर्श करके ही किया जाना चाहिए। डा. एस.पी. गुप्ता की अध्यक्षता में गठित अध्ययन समूह की रिर्पोट (मार्च, 2001) के अनुसार अनारक्षण धीरे–धीरे और किश्तों में होना चाहिए। इसके अतिरिक्त लघु उद्योगों में संरचनात्मक परिवर्तन आने से जो नवीन आयाम खुले हैं उनकी ओर विशेष ध्यान दिया जाए। उदाहरण के लिए सूचना प्रौद्योगिकी, खाद्य संसाधन, जैव प्रौद्योगिकी एवं औषध जैसे क्षेत्र के द्वारा लघु उद्योग का विकास नए आयाम प्राप्त कर रहा है। कलस्टर (समूह) से जुड़े प्रयास भी इस शृंखला की महत्वपूर्ण कड़ी है। वर्तमान बजट 2005–06 में सरकार का हथकरघा उत्पादों के उत्पादन और विपणन के लिए समूहन विकास प्रणाली अपनाने का प्रस्ताव इसी दिशा में एक प्रयास है। इसके अतिरिक्त सिडबी ने इस वर्ष 500 करोड़ रुपये की लागत से एस.एम.ई. विकास निधि की स्थापना की है। इस निधि में औषधि, बायोटेक और सूचना प्रौद्योगिकी जैसे ज्ञान आधारित उद्योगों की लघु और मध्यम इकाईयों को इक्विटी सहायता प्रदान की जाएगी।

अतः समय की मांग है कि चुनौतियों को अवसरों में बदला जाए और वर्तमान प्रतिस्पर्धात्मक स्थितियों में लघु उद्योग क्षेत्र को ऋण, प्रौद्योगिकी उन्नयन, विपणन, आधारभूत संरचनाओं और निर्यात क्षेत्र में बढ़ावा दिया जाए, उन्हें स्वपोषित किया जाए और उनकी प्रतियोगी क्षमता को इतना बढ़ाया जाए ताकि वे बाजार में बढ़ती हुई प्रतियोगिता के सामने ठहर सकें। आशा है कि 2005–06 बजट में वित्तमंत्री पी. चिदम्बरम द्वारा घोषित 'विनिर्माण प्रतिस्पर्धात्मकता कार्यक्रम' नामक स्कीम का लाभ लघु उद्योग क्षेत्र को मिलेगा और उनकी प्रतिस्पर्धात्मकता पैनी होगी तथा प्रचालन मजबूत होंगे।

उपसंहार

अंत में यह कहना ठीक होगा कि वर्तमान परिस्थितियों में लघु उद्योगों को अपना पुनर्निर्माण करना होगा। अपने अस्तित्व के लिए यह सेक्टर केवल सरकार की ओर देखता नहीं रह सकता। इसे स्वयं को विश्व स्तर पर प्रतियोगात्मक बनाना होगा। अंतरराष्ट्रीय मानकों को ध्यान रखते हुए उन्हें अपने उत्पादों के स्तर और गुणवत्ता में वृद्धि करनी होगी और साथ ही उनकी कीमतों में कमी लानी होगी। उन्हे स्वयं को उभरते सर्विस सेक्टर के रूप में प्रकट करना होगा। किन्तु ऐसा करने के लिए भी उन्हें एक सहयोगपूर्ण वातावरण चाहिए। ❑

(लेखक साउथ एशियन जरनल आफ सोशियो पालिटिकल स्टडीज के सह–संपादक और महाराजा अग्रसेन महाविद्यालय, जगाधरी में राजनीतिशास्त्र के प्रवक्ता हैं)

मानवाधिकार : नई दिशाएं

(राष्ट्रीय मानव अधिकार आयोग की वार्षिक पत्रिका का प्रथम अंक)

नन्द्रेश निगम

पुस्तक	:	मानवाधिकार : नई दिशाएं
वार्षिक अंक	:	1 (2004)
प्रकाशक	:	राष्ट्रीय मानव अधिकार आयोग
पृष्ठ संख्या	:	172

मानव अधिकार का संपूर्ण विचार–दर्शन मानव सभ्यता और संस्कृति से संबंधित है। सभ्यता के विकास के साथ–साथ मनुष्य को अपने अधिकारों का बोध होने लगा था। व्यक्ति से परिवार और परिवार से समाज तक की यात्रा में मनुष्य के नैसर्गिक एवं प्राकृतिक अधिकारों के विचार ने जन्म लिया। सभ्यता और संस्कृति की चिंतन–धारा में मानव की अस्मिता, मानवीय गरिमा की सर्वोच्चता, मानवीय प्रतिष्ठा की अपरिहार्यता और मानव के सर्वांगीण विकास का भाव प्रकट हुआ। इस विश्वव्यापी और सार्वभौमिक अवधारणा में देश और समाज के परिप्रेक्ष्य में मानव अधिकार के विभिन्न संदर्भ और आयाम भी दृष्टिगोचर हुए।

भारत के संविधान में मौलिक अधिकारों और राज्य के नीति–निर्देशक सिद्धांतों के अंतर्गत अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर मान्यता प्राप्त मानव अधिकारों को ही केंद्र में रखा गया है। इस तरह हमारे देश में नैतिकता और सदाचार के मानदंडों से संचालित होने वाले विभिन्न प्राकृतिक अधिकारों को ठोस कानूनी आधार मिल गया। संविधान की भावना के अनुरूप अनेक कानून और अधिनियम भी बने किंतु मानव अधिकारों के हनन की घटनाएं बदस्तूर जारी रहीं। इसी पृष्ठभूमि पर देश में राष्ट्रीय मानव अधिकार आयोग की स्थापना की गई ताकि मानवीय मूल्यों और आदर्शों की रक्षा के लिए कारगर उपाय किए जा सकें। आयोग का शुरू से ही यह विचार रहा है कि मानव अधिकारों का कार्यान्वयन सुनिश्चित करने के लिए आम जनता को जागरूक बनाना तथा सरकारी तंत्र को संवेदनशील बनाना अत्यंत आवश्यक है।

इसी उद्देश्य की पूर्ति के लिए आयोग ने "मानवाधिकार : नई दिशाएं" नाम से हिंदी में एक वार्षिक का प्रकाशन प्रारंभ किया है। सुप्रसिद्ध समाज सेविका, लेखिका और ज्ञानपीठ पुरस्कार विजेता महाश्वेता देवी इसकी मानद मुख्य संपादक हैं। यह पत्रिका न केवल प्रबुद्ध वर्ग के लिए बल्कि आम जनता और सरकारी तंत्र से जुड़े पदाधिकारियों के लिए भी विचार–अभिव्यक्ति का एक उपयुक्त मंच है। आयोग के अध्यक्ष न्यायमूर्ति डॉ. आदर्श सेन आनन्द ने पत्रिका की आवश्यकता को रेखांकित करते हुए कहा है–"यह जरूरी है कि मानव अधिकारों के बारे में व्यापक स्तर पर विचार–विमर्श हो और इसके बारे में लोग सजग हों।..... यह महसूस किया गया कि इस विचार–विमर्श को व्यापकता प्रदान करने के लिए भारतीय भाषाओं, विशेषतः हिंदी को माध्यम बनाना अधिक उपयुक्त होगा। इसीलिए आयोग ने यह निश्चय किया कि हिंदी में पत्रिका के प्रकाशन के माध्यम से विशाल जन–समुदाय को संबोधित किया जाए और उसकी भागीदारी सुनिश्चित की जाए।"

पत्रिका के प्रथम एवं प्रवेशांक में मानव अधिकार के विविध रूपों पर चिंतन, मनन, अध्ययन और विश्लेषण का सराहनीय प्रयास किया गया है। इसके संपादकीय और अन्य कई लेखों में मानव अधिकार के विचार की उत्पत्ति और विकास पर विशेष रूप से प्रकाश डाला गया है। जीवन की स्वतंत्रता और समानता के बारे में जानकारी देते हुए इंग्लैंड में 1215 के मैग्ना–कार्टा, 18वीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध में फ्रांस की राज्य क्रांति और अमेरिकी स्वतंत्रता संग्राम से उपजे विचारों का विशेष रूप से उल्लेख किया गया है। दोनों विश्व युद्धों में जन और धन की अपार क्षति हुई तथा इस दौरान मानवाधिकार हनन अपने वीभत्स और भयावह रूप में था। इसी को ध्यान में रखते हुए 1948 में एकपक्षीय मानव अधिकार घोषणा पत्र के माध्यम से संयुक्त राष्ट्र ने मानव अधिकारों की घोषणा की जिसमें जीने के अधिकार, स्वतंत्रता, शिक्षा, समानता, धर्म की स्वतंत्रता, संघ बनाने, सूचना पाने तथा राष्ट्रीयता के अधिकार को स्वीकार किया गया। इसमें 1966 के दो अंतर्राष्ट्रीय प्रतिज्ञा–पत्रों का भी उल्लेख किया गया है।

प्रवेशांक की एक विशेषता यह है कि इसमें मानव अधिकारों को केवल पाश्चात्य अवधारणा के संदर्भ में ही नहीं बल्कि भारतीय चिंतन–परंपरा के परिप्रेक्ष्य में भी देखा गया है। भारत में प्राचीन काल में भी मानव अधिकारों की संकल्पना विद्यमान थी। यहां मनुष्य के हित, कल्याण और अधिकार का विचार हर समय और हर युग में था। आज केवल उसके आयाम, उसका स्वरूप और उसका संदर्भ अवश्य नया है। इस बात को सिद्ध करने के लिए संपादकीय में तथा प्रो. गिरीश्वर मिश्र और डा. हरिओम के लेख में ऋग्वेद, यजुर्वेद आदि से अनेक दृष्टांत लिए गए हैं। इन दृष्टांतों में राजा–प्रजा के अधिकार और कर्तव्यों का स्पष्ट उल्लेख मिलता है। संपादक

श्री संतोष कुमार द्वारा दी गई यह जानकारी अपने–आप में महत्वपूर्ण है कि वेदों में हॉब्स, लाफक तथा रूसो के सामाजिक समझौते की हल्की–सी झलक मिलती है जिसमें व्यक्तियों ने एक सामाजिक समझौते के तहत अपने कुछ अधिकार राज्य/राजा को दिए थे, बदले में राज्य/राजा का प्रधान कार्य सुरक्षा प्रदान करना था।

भारत में स्वतंत्रता से पहले तथा स्वतंत्रता के बाद भी अनेक राजनीतिक, सामाजिक आर्थिक समस्याएं और चुनौतियां रही हैं। शोषण, उत्पीड़न, अत्याचार की घटनाओं से हमें न केवल जूझना पड़ रहा है बल्कि प्रौद्योगिकी के विकास के साथ–साथ इनके स्वरूप में खतरनाक बदलाव भी आ रहे हैं। इस संदर्भ में पत्रिका में सिर पर मैला ढोने की घृणित प्रथा से लेकर आतंकवाद तक सभी मुद्दों पर नई जानकारी देने और सार्थक विचार–विमर्श को आगे बढ़ाने का प्रयास किया गया है। डा. विन्देश्वर पाठक ने सिर पर मैला ढोने और अस्पृश्यता के अभिशाप पर गहन दृष्टि डालते हुए हमें मनुष्य के अस्तित्व की उस घृणास्पद वास्तविकता से परिचित कराया है जिसका अनुभव भारत के वाल्मीकियों ने किया है। इसी तरह हमारे देश में बच्चे भी शोषण और उत्पीड़न का आसानी से शिकार होते रहे हैं। बाल श्रमिकों की समस्या भी इसी उत्पीड़न से जुड़ी है। चमन लाल ने मजदूर बच्चों की इस त्रासदी का बारीकी से विश्लेषण किया है। बाल श्रमिकों के साथ–साथ बंधुआ श्रमिक भी सामाजिक रुग्णता का प्रतीक हैं। गरीबी और सामाजिक विषमता से जुड़ी समस्या पर स्वामी अग्निवेश ने बंधुआ मुक्ति मोर्चा की पहल पर प्रकाश डाला है। इसके अलावा पत्रिका में आतंकवादी बर्बरता और क्रूरता तथा संचार माध्यमों (मीडिया) की भूमिका से जुड़े पहलुओं पर भी विचार प्रकट किए गए हैं।

आयोग के अध्यक्ष के लेख में माता और बच्चों की देखभाल, बाल–शिक्षा, बाल–श्रम, बाल–दुर्व्यवहार, बंधुआ मजदूरी, महिलाओं के देह–व्यापार अल्पसंख्यक और दलितों जैसे कमजोर वर्गों की समस्याओं तथा उन्हें दूर करने के लिए किए गए उपायों पर प्रकाश डाला गया है। लेख में यह सर्वाधिक प्रासंगिक है कि गरीबी, मानवाधिकारों का सबसे गंभीर उल्लंघन है तथा शिक्षा, स्वास्थ्य, रोजगार के अधिकार की मनाही मानव अस्तित्व को हाशिए पर ला खड़ा करती है। कमजोर वर्ग के लोग इससे अधिक पीड़ित होते हैं। किसानों द्वारा की गई आत्महत्याएं, भुखमरी से हुई मौतें सभ्य समाज में कलंक हैं।

पत्रिका में मानव अधिकार के परिप्रेक्ष्य में पुलिस की भूमिका का कई लेखों में विवेचन किया गया है। लोकतांत्रिक देश में नागरिक अधिकारों का कार्यान्वयन बहुत हद तक पुलिस प्रशासन पर निर्भर करता है। भारत में पुलिस के सामने एक चुनौती यह है कि इसकी औपनिवेशिक काल की दमनकारी सोच आज भी जिंदा है। लोगों में पुलिस को रक्षक के रूप में ही नहीं वरन् भक्षक के रूप में भी देखा जाता है। इस दृष्टि से न्यायमूर्ति वाई. भास्कर राव, डा. त्रिनाथ मिश्र, सजेश प्रताप सिंह, अरुण कुमार, सत्यनारायण साबत ने अपने लेखों में पुलिस कार्रवाई, पुलिस और न्यायपालिका के संदर्भ में कारागरों में कैदियों में कैदियों की चर्चा होना भी नितांत आवश्यक है। डा. पी.के. अग्रवाल ने कैदियों की स्थिति और उनके अधिकारों पर महत्वपूर्ण विमर्श किया है। दलितों और पिछड़े वर्गों के संदर्भ में मुकेश कुमार मेश्राम ने जाति और वर्ग की वर्चस्ववादी, शोषणवादी, एकाधिकारवादी व्यवस्था के प्रतिकार और मानव अधिकार की संवैधानिक भूमि की मीमांसा की है।

मानव अधिकार का विषय–क्षेत्र और कार्य–क्षेत्र व्यापक है जिसके अंतर्गत व्यक्ति, समुदाय, संस्था, राज्य आदि सभी आते हैं। मानव अधिकार घर, कार्यालय, बाजार तथा उन सभी संस्थाओं के आचरण या व्यवहार से संबंधित हैं जो व्यक्ति की नैतिक, कानूनी तथा सामाजिक भूमिकाओं से जुड़े हैं। इस दृष्टि से अधिकारों की केवल जानकारी होना ही काफी नहीं है। न्यायमूर्ति सुजाता वी. मनोहर का यह स्पष्ट विचार है कि संगठित अपराध और भ्रष्टाचार आदि से निपटने के लिए जन–सामान्य को केवल अधिकारों का ज्ञान देना ही पर्याप्त नहीं है। इस संबंध में मानव अधिकारों के अफ्रीकी विशेषज्ञ पार्लेवलिट का यह उदाहरण मायने रखता है कि "मानव अधिकार सिद्धांतों को मात्र रेखांकित कर यह आशा नहीं कर सकते कि लोग इन्हें अपनाएंगे। इन सिद्धांतों को स्थानीय संस्कृति से जोड़ना होगा तभी ये लोगों में अधिक सहनशीलता, समानता और एकता ला पाएंगे। मानव अधिकार और विवादों का समाधान परस्पर जुड़े हुए हैं।"

पत्रिका में मानव अधिकार के विभिन्न पहलुओं और मुद्दों पर विचारोत्तेजक लेख प्रकाशित किए गए हैं जिनसे हमें समस्या की जड़ तक पहुंचने और उससे निपटने के संभावित उपायों की जानकारी हासिल होती है। लेखों में मनुष्य की मूलभूत समस्याओं के बारे में कुछ यक्ष प्रश्न उठाए गए हैं जिन पर हम सबको चिंतन और मंथन करना होगा। इन प्रश्नों का उत्तर खोजे बिना हम ऐसा समतामूलक समाज नहीं बना सकते जिसमें हर प्रकार के शोषण और भेदभाव से मुक्ति के साथ–साथ रोजी–रोटी की समस्या सुलझाई जा सके।

पत्रिका आम जनता, विद्यार्थियों, विश्लेषकों के साथ–साथ नीति–निर्माताओं के लिए भी उपयोगी है तथा संग्रहणीय स्रोत–सामग्री है। यह देश में मानव अधिकार संबंधी अभियान को जनांदोलन तक ले जाने में महती भूमिका निभाएगी। इसके बावजूद यह भी देखा गया है कि इस प्रवेशांक में आधी आबादी अर्थात् महिलाओं की समस्याओं पर विहंगम दृष्टि नहीं डाली गई है। बालिका भ्रूण–हत्या, बालिका शिशु–हत्या, दहेज–हत्या, देह–व्यापार, यौन शोषण आदि ज्वलंत मुद्दों पर कहीं–कहीं हल्की जानकारी ही मिल पाई है। इसी तरह शारीरिक दृष्टि से अपंग और मानसिक दृष्टि से विक्षिप्त एवं अशक्त लोगों के अधिकारों और जीवन–स्थितियों पर सामग्री नहीं मिल सकी है। प्रवेशांक में छूट गए ऐसे विभिन्न मुद्दों पर अगले अंक में विमर्श किया जा सकता है। इसके अतिरिक्त पत्रिका में मानक हिंदी वर्तनी का प्रयोग न किया जाना भी अखरता है।

यह भी सुझाव है कि भारतीय संविधान में वर्णित मौलिक अधिकारों तथा राज्य के नीति–निर्देशक सिद्धांतों के प्रत्येक अनुच्छेद की जानकारी दी जाए। इसके अलावा नागरिक अधिकारों और सामाजिक–आर्थिक अधिकारों के संरक्षण के लिए बनाए गए सभी अधिनियमों तथा अंतर्राष्ट्रीय अभिसमयों, प्रसंविदाओं और प्रपत्रों का भी क्रमवार संक्षिप्त विवरण दिया जाए। इससे पत्रिका की उपादेयता और बढ़ जाएगी। ❑

पुस्तक-चर्चा

मानवाधिकार का प्रश्न कितना पास कितना दूर?

देव प्रकाश

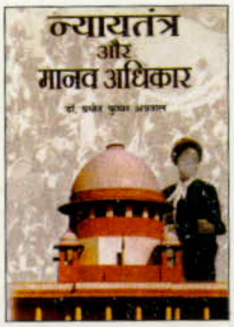

पुस्तकः न्यायतंत्र और मानव अधिकार; लेखकः डा. प्रमोद कुमार अग्रवाल; प्रकाशकः प्रवीण प्रकाशन, 1/ 1079–ई, महरौली, नई दिल्ली, पृष्ठ संख्याः 160, साईजः डिमाई, मूल्यः 200.00, संस्करणः 2005

प्राचीन काल से यहां तक वैदिक युग से एक ऐसे शब्द की गूंज हर पल, हर क्षण सभ्यता के कानों में हथौड़े की तरह चोट करती रही है और वह अलभ्य शब्द है 'न्याय'। महर्षि चाणक्य ने एक बार समुद्रगुप्त से कहा था कि "न्याय कोई बन्द सांकल नही, जिसे अपनी इच्छा से खोल दिया जाए। उसके लिए तो हमें पूरे पाटलीपुत्र में सैद्धांतिक परिभाषा की कुंजियां खोलनी पड़ेंगी।" महर्षि चाणक्य के ये बीज वाक्य न केवल इतिहास के बन्द कपाट को खोलते हैं, अपितु मानव मन को समस्त गुत्थियों को अनावृत भी करते हैं।

गत दो दशकों के दौरान पश्चिमी देशों में अद्भुत समृद्धि और भौतिकता का प्रादुर्भाव हुआ और उसके साथ ही समूचा विश्व उनकी इस वैचारिक क्रांति से चकाचौंध हुआ है। उसका आधार रहा है मानवाधिकारों का सभी राष्ट्रों, विकासशील तथा विकसित दोनों ही देशों द्वारा, समुचित रूप से परिचालन किया जाना। विश्व बैंक, संयुक्त राष्ट्र संघ अन्य राष्ट्रीय संस्थानों ने मानवाधिकारों को कार्यान्वयन का अपनी ओर से आर्थिक या अन्य सहायता का आधार बनाया। और इसी के साथ ही मानवता का दिव्य आलोक सभी जगह फैलने लगा।

लेखक डा. प्रमोद कुमार अग्रवाल की यह सद्य: प्रकाशित पुस्तक उन समस्याओं के अन्तराल को स्पष्ट करती है, जो आज भी मानवयुगीन सभ्यता से मात्र न्याय की अपेक्षा करती है। लेखक ने कोई नया पहलू नही छुआ है, किन्तु इस पुस्तक के माध्यम से जो भी कुछ कहा है वह विधि के दायरे निश्चित रूप से अपना स्थान बनाता है। मानवाधिकार शब्द की यदि हम व्याख्या करें तो हमें उसके विभिन्न आन्तरिक समकोणों की ओर जाना होगा जहां से हम लेखक की भावना को न्यायप्रियता की देहरी पर खड़े होकर आवाज लगा सकते हैं।

मानवाधिकारों के जनक प्रसिद्ध अफ्रीकी अश्वेत नेता डा. मार्टिन लूथर किंग ने अमरीका में मानवाधिकार की जोरदार वकालत की थी। और यह बात श्वेतवर्गीय लोगों को पसन्द नहीं थी। लिहाजा मार्टिन लूथर किंग जैसे नेता को भी मानवाधिकार के नाम पर शहीद होना पड़ा। काश, लेखक सामाजिक कटाक्षों से दूर रहता तो शायद इस मानवाधिकार शब्द की सम्पूर्ण व्याख्या करने में कुछ नई उपलब्धि समाज को दे पाता। संपूर्ण पुस्तक के विषयानुक्रम में ऐसे अनेक संदर्भो को लेखक ने स्पर्श किया है, जिससे मानवधिकार की पुष्टि तो होती ही है, किन्तु उसकी आधारशिला को हम कहां तक सुरक्षित रख पायेंगे, यह आज भी एक प्रश्न है। मसलन, न्याय दिये जाने में विलम्ब होने की न्यायालयीय प्रक्रिया को हम कैसे समुचित रूप दे सकते हैं, इस पर लेखक ने अपने ढंग से कुछ सुझाव दिये हैं। इसी प्रकार लेखक ने मानवाधिकार के कई पहलुओं को बारीकी से उजागर भी किया है। भारतीय संविधान एवं विधि के समक्ष मानव अधिकार, भारत में मानवाधिकारों की स्थिति, न्यायालयों द्वारा दुर्बल वर्गों का संरक्षण तथा मानव अधिकार और न्यायपालिका तथा न्यायपालिका का दायित्व आदि ऐसे सन्दर्भपूर्ण पहलू हैं जिस पर प्रमोद कुमार अग्रवाल के अपने शोधपूर्ण विचार हैं। शोधपूर्ण का अर्थ यह नहीं होता कि उनके विचारों से और लोग भी सहमत हों औसत जनभावना के अनुसार जिसमें बुद्धिजीवी भी परिणत हो सकते है वे न्यायालय की प्रक्रिया में 90 प्रतिशत लोग बहुत सम्मानित विचार नही रखते। क्या आजादी के 57वें वर्ष के बाद भी न्यायिक प्रक्रिया अथवा मानवाधिकार का उद्बोध उचित सीमाओं के दायरे में इसी तरह कैद रहेगा? आज भारत के समक्ष सबसे बड़ा सवाल है न्यायिक प्रक्रिया में आमूल संशोधन हो, जिससे उसमें लोगों का विश्वास पुनर्जीवित हो सके। सामान्यतः पुस्तक में ऐसे कुछ प्रकरण हैं, जिस पर बौद्धिक वर्ग का ध्यान जा सकता है। लेखिकीय प्रस्तावना के अन्तर्गत जो विचार व्यक्त किए गए हैं, उसमें जल्दबाजी का आभास मिलता है।

ऐसा लगता है कि लेखक ने अपनी पुस्तक में नागरिक स्वतंत्रता, मानव अधिकार संबंधी कानूनी– समझौतों के कार्यान्वयन महिलाओं और बच्चों के मूल अधिकार, कामगारों की समस्याओं, अनुसंधान कार्य तथा प्रस्तावित योजनाओं, मानव अधिकार में साक्षरता और गुप्त जानकारी का संकेत, गैर–सरकारी संगठनों की सीमागत स्वतंत्रता, उत्तम स्वास्थ्य की संप्राप्ति में मानव अधिकार का योगदान प्रशासन संबंधी मूलभूत आवश्यकताओं में मानवाधिकारों का यथोचित समावेश तथा मानवाधिकार से संबंधित विधिगत मामलों का लम्बित किया जाना, आदि ऐसे महत्वपूर्ण सन्दर्भ हैं जिनकी कि लेखक ने दूरदर्शी दृष्टि से अपने विचार नही रखे हैं तथा जिन्हें और विस्तार से लिखा होता तो इस प्रकाशन की प्रामाणिकता और बढ़ जाती। विश्वसंघीय देशों ने भी मानवाधिकार के इन प्रश्नों को अछूता नहीं समझा है। फिर भारत में इस संबंध में ऐसी उदासीनता क्यों है?

पुस्तक का आवरण विषयानुकूल है। मुद्रणगत कुशलता भी पूरी पुस्तक में दिखाई देती है। किन्तु इसका मूल्य अधिक जान पड़ता है। आज देश में ग्रामीण संस्थानों को इस प्रकार की पुस्तकों की जरूरत पड़ेगी। देशभर के वाचनालयों की रुचि को भी प्रकाशक को आर्थिक दृष्टि से ध्यान में रखना चाहिए था। लेखक निस्संदेह बधाई के पात्र हैं कि ऐसे समीचीन विषय पर अपने ढंग से विचार रखे। ❑

नीम के पेटेंट पर भारत की विजय

पिछले 10 वर्षों से नीम पेटेंट को लेकर अमेरिका के साथ यूरोपियन पेटेंट ऑफिस में जो कानूनी लड़ाई चल रही थी उसमें भारत की जीत से नीम को अब कोई भी देश भारत से अलग नही कर सकता है। नीम के पक्ष में भारतीय किसानों का अनुभव और कृषि वैज्ञानिकों द्वारा किए गए अनुसंधानों के इतने ठोस और अति प्राचीन संदर्भ प्रस्तुत किए गए थे कि अमेरिका के लिए इतने साक्ष्य जुटाना असंभव था। वैसे भी अमेरिका चाहे बासमती चावल का मामला हो या नीम का, सब पर पेटेंट के लिए अपने दावे ठोक देता है। लेकिन नीम को लेकर भारत ने एक बहुत महत्वपूर्ण लड़ाई जीत ली है। खास कर राजस्थान की जलवायु नीम के पेड़ के लिए काफी उपयुक्त है इसे पहाड़ी इलाकों को छोड़ राजस्थान के किसी भी इलाके में लगाया जा सकता है और सबसे बड़ी बात यह है कि यह कम पानी में भी काफी तेजी से आगे बढ़ता है और देखते ही देखते वृक्ष बन जाता है।

भारत के इतने उपयोगी और महत्वपूर्ण नीम को अमेरिकियों के चंगुल से छुड़ाने में पर्यावरणविद वन्दना शिवा को काफी मेहनत करनी पड़ी है। सर्वप्रथम 1995 में भारत के हाथ से नीम का पेटेंट निकलकर अमेरिका के कृषि विभाग के पास चला गया था। अमेरिका की पूरी कोशिश नीम के पेटेंट हथियाने की थी। लेकिन भारत के दोबारा अपील करने नीम की भारतीय समाज में प्राचीनकाल से चलती आ रही उपयोगिता के अनेक प्रमाणिक दस्तावेज प्रस्तुत करने के बाद उस निर्णय पर फिर विचार करके यह तय पाया गया कि नीम के पेटेंट का हकदार भारत है। यदि नीम पर भारत का अधिकार नही मिलता तो वह एक ऐसे उपयोगी वृक्ष को हमेशा के लिए खो देता जिससे कीटनाशी गुणों के साथ इसके तेल से अनेक कीट निरोधी औषधियों का निर्माण होता है। इसके फलों से तेल निकाला जाता है और इसकी खली का उपयोग खाद के काम में आता है। जिस खेत में नीम की खली का उपयोग किसान करते हैं उससे उस जमीन की उत्पादकता तो बढ़ती ही है उसमें अन्य किसी अन्य किसी तरह के कीटाणु नहीं लगते जिससे फसलों की सुरक्षा हो जाती है। यह एक ऐसा वृक्ष है जिसकी पत्तियां, फल, फूल और तना सभी मनुष्य के लिए लाभकारी है। नीम से मिलने वाले लाभ को रुपयों से नहीं आंका जा सकता।

विशेषज्ञों का मानना है कि इस देश की 70 प्रतिशत से अधिक कृषि पद्धतियां प्राचीन एवं परम्परागत ज्ञान पर आधारित हैं जो भारतीय जलवायु के अनरूप है। इसलिए सरकार को प्राचीन ज्ञान और अनुभवों को डिजीटलाज्ड करने से ज्यादा जरूरी इनको पेटेंट की सुरक्षा देकर विदेशी कृषि कंपनियों को हाथों में जाने से रोकना है। उदाहरण के लिए गेंहू की कई भारतीय वेराईटी के पेटेंट के लिए अभी विवाद चल रहा है। इसके पूर्व बासमती चावल के पेटेंट के लिए अमेरिका ने दावा कर दिया था। जैसे ही विदेशी कृषि विशेषज्ञों को किसी उपेक्षित फसल या औषधिय पेड़ पौधे की उपयोगिता की जानकारी मिलती है तो वे उसें पेटेंट कराने के लिए कोशिश में लग जाते है। तबतक इस देश में उसकी ओर किसी का ध्यान नहीं जाता। आज भले ही नीम का इतना महत्वपूर्ण लग रहा हो लेकिन इस विवाद से पूर्व वह एक वृक्ष के रूप में अनचाहे खाली जमीन पर उगता और फलता–फूलता रहता था।

अपने औषधीय के गुणों के कारण नीम के बीज से बने औषधियों के पर्यावरण की दृष्टि से कीटनाशकों के उत्साहवर्द्धक नतीजे सामने आए हैं। संयुक्त राष्ट्र संघ की मदद से किए गए इसके कीटनाशकों का प्रयोग करके यह तय किया गया है कि इसे कम लागत में किसान स्वयं अपने–अपने घरों में तैयार कर सकते है। नीम के बीज से बने कीटनाशक एन के ए इ का वैज्ञानिक परीक्षण प. बंगाल और महाराष्ट्र सरकार द्वारा सब्जियों पर किया जा चुका है। इस परीक्षण का उद्देश्य नीम से बने उत्पाद, उनके प्रसंस्करण और इस्तेमाल को बढ़ावा देना था। विशेषज्ञ मानते है कि नीम के ऐसे प्रयोगों से ग्रामीण क्षेत्र में रोजगार को भी बढ़ावा मिल सकता है। ❑

राधेश्याम

कृषि

● भंडारण तथा विपणन ढांचे को उन्नत बनाने के लिए ग्रामीण भंडारण योजना और विपणन ढांचा विकास, कृषि–वर्गीकरण और मानकीकरण नाम से दो योजनाएं शुरू की गईं। ● किसानों के लिए ऋण पैकेज की घोषणा। ● पिछले वर्ष की तुलना में 30 प्रतिशत अधिक ऋण दिए गए। तीन वर्षों में से तिगुना किया जाएगा। ● कृषि अनुसंधान और शिक्षा के लिए योजना आबंटन 775 करोड़ रुपये से बढ़ाकर इस वर्ष 1000 करोड़ रुपये किया गया। ● रबी फसलों के लिए समर्थन मूल्य बुवाई सीजन के दौरान ही घोषित, ताकि किसान बुवाई के समय अपनी पसंद से फसल का चयन कर सकें। ● इस वर्ष कपास के रिकार्ड उत्पादन से कीमतें समर्थन मूल्य से नीचे न आएं, इसके लिए भारतीय कपास निगम उपाय करेगा और कपास निर्यात को बढ़ावा देगा। ● तिलहन और दलहन के न्यूनतम समर्थन मूल्य में पर्याप्त वृद्धि। ● खेती में जैव प्रौद्योगिकी के उपयोग के बारे में प्रो. एम एस स्वामीनाथन की अध्यक्षता में कार्यबल गठित किया गया। कार्यबल ने राष्ट्रीय जैव प्रौद्योगिकी विनियामक प्राधिकरण के गठन और जैव–प्रौद्योगिकी से संबंधित विषयों के बारे में जन–जागरूकता बढ़ाने की सिफारिश की। ● कृषि मंत्रालय ने राष्ट्रीय बीज निगम के निदेशक मंडल में दो और भारतीय राज्य कृषि निगम के निदेशक मंडल में एक किसान को नामित किया। ● विभिन्न आपदाओं से पीड़ित किसानों को ऋण और ब्याज की किस्तों के पुनर्निधारण के जरिए राहत पहुंचाई जाएगी। ❑

आर. एन./708/57
डाक–तार पंजीकरण संख्या : डी.एल. 12057/2003–05
आई.एस.एस.एन. 0971–8451, पूर्व भुगतान के बिना आर.एम.एस.
दिल्ली में डाक में डालने के लिए लाइसेंस : यू (डी.एन.) –55/2003–5

R.N./708/57
P&T Regd. No. DL 12057/2003-05
ISSN 0971-8451, Licenced under U (DN)-55/2003-05
to Post without pre-payment at R.M.S. Delhi.

आज ही अपने एजेंट से
रोज़गार समाचार की प्रति बुक करायें!

रोज़गार समाचार

रोज़गार, व्यवसाय तथा समसामयिक विषयों की एक संपूर्ण मार्गदर्शक पत्रिका

अब और नये आकर्षक तथा पाठक उपयोगी कलेवर में!
नये फीचर, व्यवसाय मार्गदर्शन और नये उभरते क्षेत्रों में रोज़गार के अवसर

जानकारी के लिए कृपया संपर्क करें

रोज़गार समाचार

पूर्वी खण्ड–4, तल–5, रामकृष्ण पुरम
नई दिल्ली – 110 066

प्रकाशन विभाग
सूचना और प्रसारण मंत्रालय
भारत सरकार

प्रो. उमाकांत मिश्र, निदेशक, प्रकाशन विभाग, पटियाला हाऊस, नई दिल्ली–110001 द्वारा प्रकाशित और मुद्रित।
मुद्रक : अरावली प्रिंटर्स एण्ड पब्लिशर्स प्रा. लि., डब्ल्यू–30 ओखला इंडस्ट्रीयल एरिया–II, नई दिल्ली–20 : संपादक : स्नेह राय